CENTRAL LIBRARY

H
891.4308
C 186

INTERMEDIATE
HINDI SELECTIONS

Part III

साहित्य-संकलन

तृतीय खण्ड

प्रथम संस्करण

कलकत्ता विश्वविद्यालय
१९५२

सूची

	विषय	लेखक	पत्रांक
१।	कबीर की साखियाँ	कबीरदास	१
२।	कबीर का रहस्यवाद	,,	८
३।	पद्मावती-गोरा-बादल-संवाद-खंड	मलिक मुहम्मद जायसी	१२
४।	गोरा-बादल-युद्ध-यात्रा-खंड	,,	१४
५।	सूरदास के पद	सूरदास	१७
६।	भ्रमरगीत	,,	२४
७।	कवितावली (अयोध्याकाण्ड)	तुलसीदास	२७
८।	दोहावली	,,	३४
९।	रामचन्द्रिका	केशवदास	३६
१०।	हरिचरण-बंदना	मीराँबाई	४९
११।	बिहारी के दोहे	बिहारीलाल	५३
१२।	रसखान	रसखान	५५
१३।	विरह-निवेदन	घनआनंद	५८
१४।	शिवराज-भूषण	भूषण	६४
१५।	गङ्गा-लहरी	पद्माकर	६९
१६।	प्रेम-फुलवारी की भूमि	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	७२
१७।	गंगा वर्णन	,,	७६
१८।	यमुना वर्णन	,,	७७
१९।	हास्य (गिरिजा-सिन्धुजा संवाद)	सत्यनारायण कविरत्न	७९
२०।	शरद	,,	८०
२१।	हेमन्त	,,	८१
२२।	उद्धव-शतक	जगन्नाथदास 'रत्नाकर'	८३
२३।	यशोधरा (१)	मैथिलीशरण गुप्त	९०
२४।	राहुल-जननी	,,	९२

	विषय	लेखक	पत्रांक
२५।	यशोधरा (२)	,,	९३
२६।	साकेत : ऊर्मिला-विरह	,,	९५
२७।	साकेत : ऊर्मिला-मिलाप	,,	९८
२८।	प्रिय-प्रवास	अयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिऔध"	१०२
२९।	आश्रम में सीता	,,	१०६
३०।	गीत	जयशंकर प्रसाद	१११
३१।	लहर	,,	११२
३२।	वे कुछ दिन कितने सुंदर थे	,,	११२
३३।	शिल्प-सौन्दर्य	,,	११३
३४।	खोलो द्वार	,,	११५
३५।	तुम कनक किरण के अंतराल में	,,	११६
३६।	निकल मत बाहर दुर्बल आह	,,	११७
३७।	भारत-महिमा	,,	११८
३८।	देवसेना	,,	११९
३९।	आँसू	,,	१२०
४०।	प्रीति समर्पण	सुमित्रानंदन पंत	१२४
४१।	शरदश्री	,,	१२५
४२।	ममता	,,	१२६
४३।	एक तारा	,,	१२८
४४।	संध्या	,,	१३०
४५।	छाया	,,	१३१
४६।	जिज्ञासा	,,	१३५
४७।	चांदनी	,,	१३६
४८।	पहिचान	महादेवी वर्मा	१३८
४९।	वे दिन	,,	१४०
५०।	गीत	,,	१४२
५१।	सान्ध्य गीत	,,	१४६

	विषय	लेखक	पत्रांक
५२।	बादल-राग	सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'	१४८
५३।	जागो फिर एक बार	,,	१५०
५४।	तुम और मैं	,,	१५२
५५।	भिक्षुक	,,	१५४
५६।	गीत	,,	१५४
५७।	क्या दूं?	,,	१५५
५८।	मौन रही हार	,,	१५६
५९।	मरण का जिसने वरा है	,,	१५७
६०।	गीत	रामकुमार वर्मा	१५७
६१।	कंकाल	,,	१५९
६२।	ये गजरे तारों वाले	,,	१६३
६३।	समय शान्त है	,,	१६४
६४।	भूलकर भी तुम न आये	,,	१६४
६५।	मैं क्या गाऊं?	,,	१६५
६६।	कुरुक्षेत्र	रामधारी सिंह 'दिनकर'	१६६
६७।	कस्मै देवाय?	,,	१७०
६८।	विश्वप्रिया	'अज्ञेय'	१७२
६९।	एकायन	,,	१७५
७०।	नदी के द्वीप	,,	१७६
७१।	आरती के दीप	,,	१७८

साहित्य-संकलन

[तृतीय खण्ड]

कबीर की साखियाँ

प्रेम

यह तो घर है प्रेम का खाला का घर नाहि।
सीस उतारै भुइं धरै तब पैठै घर माहि॥१
सीस उतारै भुइं धरै ता पर राखै पाव।
दास कबीरा यों कहै ऐसा होय तौ आव॥२
प्रेम न बाड़ी ऊपजै प्रेम न हाट बिकाय।
राजा परजा जेहि रुचै सीस देइ लै जाय॥३
प्रेम पियाला जो पियै सीस दच्छिना देय।
लोभी सीस न दै सकै नाम प्रेम का लेय॥४
छिनहिं चढ़ै छिन ऊतरै सो तो प्रेम न होय।
अघट प्रेम पिंजर बसै प्रेम कहावै सोय॥५
जब मैं था तब गुरु नहीं अब गुरु हैं हम नाहि।
प्रेम गली अति सांकरी ता मैं दो न समाहि॥६
जा घट प्रेम न संचरै सो घट जान मसान।
जैसे खाल लोहार की सांस लेत बिनु प्रान॥७
उठा बगूला प्रेम का तिनका उड़ा अकास।
तिनका तिनका से मिला तिन का तिन के पास॥८
सौ जोजन साजन बसै मानो हृदय मंझार।
कपट सनेही आंगने जानु समुंदर पार॥९

CENTRAL LIBRARY

यह तत वह तत एक है एक प्रान दुइ गात।
अपने जिय से जानिए मेरे जिय की बात ॥१०
हम तुम्हरो सुमिरन करें तुम मोहि चितवौ नाहि।
सुमिरन मन की प्रीति है सो मन तुमहीं माहि ॥११
प्रीति जो लागी घुल गई पैठि गई मन माहि।
रोम रोम पिउ पिउ करै मुख की सरधा नाहि ॥१२
जो जागत सो स्वप्न में ज्यों घट भीतर स्वांस।
जो जन जाको भावता सो जन ताके पास ॥१३
पीया चाहै प्रेम रस राखा चाहै मान।
एक म्यान में दो खड़ग देखा सुना न कान ॥१४
कबिरा प्याला प्रेम का अंतर लिया लगाय।
रोम रोम में रमि रहा और अमल क्या खाय ॥१५
कबिरा हम गुरु रस पिया बाकी रही न छाक।
पाका कलस कुम्हार का बहुरि न चढ़सी चाक ॥१६
सबै रसायन मैं किया प्रेम समान न कोय।
रती एक तन संचरै सब तन कंचन होय ॥१७
राता माता नाम का पीया प्रेम अघाय।
मतवाला दीदार का मांगै मुकुति बलाय ॥१८
मिलना जग में कठिन है मिलि बिछुड़ो जनि कोय।
बिछुड़ा साजन तेहि मिलै जिन माथे मनि होय ॥१९
जोई मिलै सो प्रीति में और मिलै सब कोय।
मन से मनसा ना मिले देह मिले का होय ॥२०
नैनों की करि कोठरी पुतरी पलंग बिछाय।
पलकों की चिक डारि के पिय को लिया रिझाय ॥२१
जब लगि मरने से डरै तब लगि प्रेमी नाहि।
बड़ी दूर है प्रेम घर समझ लेहु मन माहि ॥२२
हरि से तू जनि हेत कर कर हरिजन से हेत।
माल मुलुक हरि देत हैं हरिजन हरिहीं देत ॥२३

कहा भयो तन बीछुरे दूरि बसे जे वास।
नैनोही अंतर परा प्राण तुम्हारे पास ॥२४

जल में बसै कुमोदिनी चंदा बसै अकास।
जो है जाको भावतौ सो ताही के पास ॥२५

प्रीतम को पतियां लिखूं जो कहुं होय विदेस।
तन में मन में नैन में ताको कहा संदेस ॥२६

अगिनि आंच सहना सुगम सुगम खड़ग की धार।
नेह निभावन एक रस महा कठिन व्योहार ॥२७

नेह निभाए ही बनै सोचे बनै न आन।
तन दै मन दै सीस दै नेह न दीजै जान ॥२८

कांच कथीर अधीर नर ताहि न उपजै प्रेम।
कह कबीर कसनी सहै कै हीरा कै हेम ॥२९

कसत कसौटी जो टिकै ताको सब्द सुनाय।
सोई हमरा बंस है कह कबीर समुझाय ॥३०

स्मरण

दुख में सुमिरन सब करें सुख में करै न कोय।
जो सुख में सुमिरन करें तो दुख काहे होय ॥३१

सुख में सुमिरन ना किया दुख में कीया याद।
कह कबीर ता दास की कौन सुनै फिरियाद ॥३२

सुमिरन की सुधि यौं करो जैसे कामी काम।
एक पलक बिसरै नहीं निस दिन आठौ जाम ॥३३

सुमिरन सों मन लाइए जैसे नाद कुरंग।
कह कबीर बिसरै नहीं प्रान तजै तेहि संग ॥३४

सुमिरन सुरत लगाइ के मुख तें कछू न बोल।
बाहर के पट देइ के अंतर के पट खोल ॥३५

माला फेरत जुग गया गया न मन का फेर।
कर का मन का डारि दे मन का मनका फेर ॥३६

कबिरा माला मनहिं की और संसारी भेख।
माला फेरे हरि मिलें गले रहंट के देख ॥३७

कबिरा माला काठ की बहुत जतन का फेर।
माला स्वास उसास की जामें गांठ न मेर ॥३८

सहजैं ही धुन होत है हर दम घट के माहिं।
सुरत सबद मेला भया मुख की हाजत नाहिं ॥३९

माला तौ कर में फिरै जीभ फिरै मुख माहिं।
मनुवां तो दहुं दिसि फिरै यह तो सुमिरन नाहिं ॥४०

तन थिर मन थिर वचन थिर सुरत निरत थिर होय।
कह कबीर एहि पलक का कलप न पावै कोय ॥४१

जाप मरै अजपा मरै अनहद भी मरि जाय।
सुरत समानी सबद में ताहि काल नहिं खाय ॥४२

कबीर छुधा है कूकरी करत भजन में भंग।
याको टुकड़ा डारि कै सुमिरन करो निसंक ॥४३

बिस्वास

कबिरा का मैं चितहूं मम चिते का होय।
मेरी चिता हरि करैं चिता मोहिं न कोय ॥४४

साधू गांठि न बांधई उदर समाता लेय।
आगे पाछे हरि खड़े जब मांगै तब देय ॥४५

पौ फाटी पगरा भया जागे जीवा जून।
सब काहू को देत है चोंच समाता चून ॥४६

सांई इतना दीजिए जामें कुटुंम समाय।
मैं भी भूखा ना रहूं साधु न भूखा जाय ॥४८

गाया जिन पाया नहीं अनगाए तें दूरि।
जिन गाया बिस्वास गहि ताके सदा हजूरि ॥४९

बिरहिन

बिरहिन देय संदेसरा सुनो हमारे पीव।
जल बिन मछरी क्यों जिए पानी में का जीव ॥५०

अंखियां तो झांई परीं पंथ निहार निहार।
जीहड़िया छाला परा नाम पुकार पुकार ॥५१

नैनन तो झरि लाइया रहट बहै निसु बास।
पपिहा ज्यों पिउ पिउ रटै पिया मिलन की आस ॥५२

बहुत दिनन की जोवती रटत तुम्हारो नाम।
जिव तरसै तुव मिलन को मन नाहीं बिश्राम ॥५३

बिरह भुवंगम तन डसा मंत्र न लागै कोय।
नाम बियोगी ना जिए जिए तो बाउर होय ॥५४

बिरह भुवंगम पैठि कै किया कलेजे घाव।
बिरही अंग न मोड़िहै ज्यों भावै त्यों खाव ॥५५

कै बिरहिन को मीचि दै कै आपा दिखराय।
आठ पहर का दाझना मो पै सहा न जाय ॥५६

बिरह कमंडल कर लिए बैरागी दुइ नैन।
मांगें दरस मधूकरी छके रहैं दिन रैन ॥५७

यहि तन का दिवला करौं बाती मेलौं जीव।
लोहू सींचौं तेल ज्यों कब मुख देखौं पीव ॥५८

बिरही आया दरस कूं करुआ लागा काम।
काया लागी काल होय मीठा लागा नाम ॥५९

हंस हंस कंत न पाइया जिन पाया तिन रोय।
हांसी खेले पिय मिलै तो कौन दुहागिन होय ॥६०

मांस गया पिंजर रहा ताकन लागे काग।
साहेब अजहुं न आइया मंद हमारे भाग ॥६१

अंखियां प्रेम बसाइया जनि जाने दुखदाय।
नाम सनेही कारने रो रो रात बिताय ॥६२

हवस करै पिय मिलन की औ सुख चाहै अंग।
पीर सहे बिनु पदमिनी पूत न लेत उछंग ॥६३
बिरहिन ओदी लाकड़ी सचपै औ धुंधुआय।
छूटि परै या बिरह ते जौ सिगरी जरि जाय ॥६४
परबत परबत में फिरी नैन गंवायो रोय।
बूटी सो पायी नहीं जाते जीवन होय ॥६५
हिरदे भीतर दव बलै धुआं न परगट होय।
जाके लागी सो लखै की जिन लाई सोय ॥६६
सबही तरु तर जाइ के सब फल लीन्हों चीख।
फिरि फिरि मांगत कबिर है दरसन ही की भीख ॥६७
पिय बिन जिय तरसत रहै पल पल बिरह सताय।
रैन दिवस मोहि कल नहीं सिसक सिसक जिय जाय ॥६८
सांई सेवत जरि गई मास न रहिया देह।
सांई जब लगि सेइहौं यह तन होय न खेह ॥६९
बिरहा बिरहा मत कहौ बिरहा है सुल्तान।
जा घट बिरह न संचरै सो घट जान मसान ॥७०
देखत देखत दिन गया निसि हू देखत जाय।
बिरहिन पिय पावै नहीं केवल जिय घबराय ॥७१
सो दिन कैसा होयगा गुरू गहेंगे बांह।
अपने कर बैठावहीं चरनकंवल की छांह ॥७२
जो जन बिरही नाम के सदा मगन मन मांहि।
ज्यों दरपन की सुंदरी किनहूं पकरी नांहि ॥७३
चकई बिछुरी रैन की आय मिली परभात।
सत्गुरु से जो बीछुरे मिले दिवस नहि रात ॥७४
बिरहिन उठि उठि भुइं परै दरसन कारन राम।
मूए पाछे देहुगे सो दरसन केहि काम ॥७५
मूए पाछे मत मिलौ कहै कबीरा राम।
लोहा माटी मिलि गया तब पारस केहि काम ॥७६

सब रग तांत रबाव तन बिरह बजावै नित्त।
और न कोई सुनि सकै कै सांई कै चित्त ॥७७

तू मति जानै बीसरूं प्रीति घटै मम चित्त।
मरौं तो तुम सुमिरत मरौं जिऔं तो सुमिरौं नित्त ॥७८

बिरह अगिन तन मन जरा लागि रहा तत जीव।
कै वा जानै बिरहिनी कै जिन भेंटा पीव ॥७९

कबिरा बैद बुलाइया पकरि कै देखी बांह।
बैद न बेदन जानई करक करेजे माहि ॥८०

बिरह बान जेहि लागिया औषध लगत न ताहि।
सुसुकि सुसुकि मरि मरि जियै उठै कराहि कराहि ॥८१

परीक्षक (पारखी)

हीरा तहां न खोलिए जहं खोटी है हाट।
कस करि बांधो गांठरी उठिकर चालो बाट ॥८२

हीरा पाया परखि के धन में दीया आन।
चोट सही फूटा नहीं तब पाई पहिचान ॥८३

जो हंसा मोती चुगै कांकर क्यों पतियाय।
कांकर माथा ना नवै मोती मिलै तो खाय ॥८४

हंसा बगुला एक सा मानसरोवर माहि।
बगा ढंढोरै माछरी हंसा मोती खाहि ॥८५

चंदन गया बिदेसड़े सब कोइ कहै पलास।
ज्यों ज्यों चूल्हे झोंकिया त्यों त्यों अधिकी बास ॥८६

एक अचंभा देखिया हीरा हाट बिकाय।
परखनहारा बाहिरी कौड़ी बदले जाय ॥८७

दाम रतन धन पाइकै गांठि बांधि ना खोल।
नांहि पटन नहि पारखी नहि गाहक नहि मोल ॥८८

पारस रूपी जीव है लोह रूप संसार।
पारस ते पारस भया परख भया टकसार ॥८९

CENTRAL LIBRARY

अमृत केरी पूरिया बहु बिधि लीन्ही छोरि।
आप सरीखा जो मिले ताहि पिआऊं घोरि॥९०
काजर ही की कोठरी काजर ही का कोट।
तौ भी कारी ना भई रही जो ओटहि ओट॥९१
ज्ञान रतन की कोठरी चुप करि दीन्ही ताल।
पारखि आगे खोलिए कुंजी बचन रसाल॥९२
नग पखान जग सकल हैं लखि आवैं सब कोइ।
नग ते उत्तम पारखी जग में बिरला कोइ॥९३
बलिहारी तिहि पुरुष की पर चित परखनहार।
सांई दीन्ही खांड़ को खारी बूझ गंवार॥९४
हीरा वही सराहिए सहैं घनन की चोट।
कपट कुरंगी मानवा परखत निकसा खोट॥९५
हीरा परा बजार में रहा छार लपटाय।
बहुतक मूरख चलि गए पारखि लिया उठाय॥९६
कलि खोटा जग आंधरा सबद न मानै कोय।
जाहि कहौं हित आपना सो उठि बैरी होय॥९७

—कबीरदास

कबीर का रहस्यवाद

(१)

वाल्हा आव हमारे गेह रे
तुम बिन दुखिया देह रे।
सब को कहै तुम्हारी नारी
मोकों इहै अदेह रे,

एकमेक ह्वै सेज न सोवैं,
तब लग कैसा नेह रे।
आन न भावै, नींद न आवै
ग्रिह बन धरै न धीर रे,
ज्यूँ कामी कों काम पियारा,
ज्यूँ प्यासे कूँ नीर रे।
है कोई ऐसा पर उपकारी,
हरिसूं कहै सुनाइ रे,
ऐसे हाल कबीर भये हैं,
बिन देखें जिव जाय रे।

(२)

दुलहिनी गावहु मंगलचार,
हम घरि आए हो राजा राम भतार।
तन रत करि मैं मन रति करि हूँ,
पंच तत्त बराती,
रामदेव मोरे पाहुने आए,
मैं जोबन में माती।
सरीर सरोवर बेदी करि हूँ,
ब्रह्मा बेद उचार,
रामदेव संगि भांवर लेहूँ,
धनि धनि भाग हमार।
सुर तेंतीसूँ कौतिग आए,
मुनिवर सहस अठासी,
कहै कबीर हम ब्याहि चले हैं,
पुरिष एक अबिनासी।

(३)

ये अंखियाँ अलसानी हो;
पिय सेज चलो।
खंभ पकरि पतंग अस डोलै
बोलै मधुरी बानी।
फूलन सेज बिछाय जौं राख्यो
पिया बिना कुंभिलानी।
धीरे पाँव धरो पलंगा पर
जागत ननद जिठानी।
कहँ कबीर सुनो भाई साधो
लोक लाज बिलछानी।

(४)

पिय ऊँची रे अटरिया तोरी देखन चली।
ऊँची अटरिया जरद किनरिया
लगी नाम की डोरिया।
चांद सुरज सम दियना बरत हैं
ता बिच भूलि डगरिया।
पाँच पचीस तीन घर बनिया
मनुआँ है चौधरिया।
मुंशी है कोतवाल ज्ञान को
चहुँ दिसि लगी बजरिया।
आठ मरातिब दस दरवाजे
नौ में लगी किवरिया।
खिरकि बैठ गोरी चितवन लागी
उपरां झांप झोपरिया।
कहत कबीर सुनो भाई साधो
गुरु चरनन बलिहरिया।

(५)

घूँघट को पट खोल रे तोको पीव मिलेंगे।
घट घट में वह साँई रमता कटुक बचन मति बोल रे।
धन जोबन को गर्व न कीजै झूठा पंचरंग चोल रे।
सुन्न महल में दियना बारि ले आसा सों मत डोल रे।
जोग जुगुत सों रंग-महल में पिय पायो अनमोल रे।
कहै कबीर अनंद भयो है बाजत अनहद ढोल रे।

(६)

माया महा ठगिनि हम जानी।
तिरगुन फाँस लिए कर डोलै बोलै मधुरी बानी॥
केशव के कमला ह्वै बैठी शिव के भवन भवानी।
पंडा के मूरति ह्वै बैठी तीरथ में भइ पानी॥
योगी के योगिन ह्वै बैठी राजा के घर रानी॥
काहू के हीरा ह्वै बैठी काहु के कौड़ी कानी॥
भक्तन के भक्तिनि ह्वै बैठी ब्रह्मा के ब्रह्मानी।
कहै कबीर सुनो हो संतो! यह सब अकथ कहानी॥

—कबीरदास

———

पद्मावती-गोरा-बादल-संवाद-खंड

सखिन्ह बुझाई दगध अपारा। गइ गोरा बादल के बारा॥
चरन-कँवल भुइँ जनम न धरे। जात तहाँ लगि छाला परे॥
निसरि आए छत्री सुनि दोऊ। तस काँपे जस काँप न कोऊ॥
केस छोरि चरनन्ह-रज झारा। कहाँ पावँ पदमावति धारा ?॥
राखा आनि पाट सोनवानी। बिरह-बियोगिनि बैठी रानी॥
दोउ ठाढ़ होइ चँवर डोलावहिं। "माथे छात, रजायसु पावहिं॥
उलटि बहा गंगा कर पानी। सेवक-बार आइ जो रानी॥
का अस कस्ट कीन्ह तुम्ह, जो तुम्ह करत न छाज।
अज्ञा होइ बेगि सो, जीउ तुम्हारे काज" ॥ १॥

कही रोइ पदमावति बाता। नैनन्ह रकत दीख जग राता॥
उथल समुद जस मानिक-भरे। रोइसि रुहिर-आँसु तस ढरे॥
रतन के रंग नैन पै वारौं। रती रती कै आँसू ढारौं॥
भँवरा ऊपर कँवल भवावौं। लेइ चलु तहाँ सूर जहँ पावौं॥
हिय कै हरदि, बदन कै लोहू। जिउ बलि देउँ सो सँवरि बिछोहू॥
परहिं आँसू जस सावन-नीरू। हरियरि भूमि, कुसुंभी चीरू॥
चढ़ी भुअंगिनि लट लट केसा। भइ रोवति जोगिन के भेसा॥
बीर बहूटी भइ चलीं, तबहुँ रहहिं नहिं आँसु।
नैनहिं पंथ न सूझै, लागेउ भादौं मासु॥ २॥

तुम गोरा बादल खँभ दोऊ। जस रन पारथ और न कोऊ॥
दुख बरखा अब रहै न राखा। मूल पतार, सरग भइ साखा॥
छाया रही सकल महि पूरी। बिरह-बेलि भइ बाढ़ि खजूरी॥
तेहि दुख लेत बिरिछ बन बाढ़े। सीस उघारे रोवहिं ठाढ़े॥
पुहुमि पूरि, सायर दुःख पाटा। कौड़ी केर बेहरि हिय फाटा
बेहरा हिये खजूर क बिया। बेहर नाहिं मोर पाहन-हिया॥
पिय जेहि बँदि जोगिनि होइ धावौं। हौं बँदि लेउँ, पियहि मुकरावौं॥
सूरुज गहन-गरासा, कँवल न बैठे पाट।
महूँ पंथ तेहि गवनब, कंत गए जेहि बाट॥ ३॥

गोरा बादल दोउ पसीजे। रोवत रुहिर बूड़ि तन भीजे॥
हम राजा सौं इहै कोहाँने। तुम न मिलौ, धरिहैं तुरकाने॥
जो मति सुनि हम गये कोहाँई। सो निआन हम्ह माथे आई॥
जौ लगि जिउ, नहिं भार्गाह दोऊ। स्वामि जियत कित जोगिनि होऊ॥
उए अगस्त हस्ति जब गाजा। नीर घटे घर आइहि राजा॥
बरषा गए, अगस्त जौ दीठिहि। परिहि पलानि तुरंगम पीठिहि॥
बेधौं राहु, छोड़ावहुँ सूरू। रहै न दुख कर मूल अँकूरू॥
सोइ सुर, तुम ससहर, आनि मिलावौं सोइ।
तस दुख महँ सुख उपजै, रैनि माहँ दिनि होइ॥ ४॥

लीन्ह पान बादल औ गोरा। "केहि लेइ देउँ उपम तुम्ह जोरा? ॥
तुम सावंत, न सरवरि कोऊ। तुम्ह हनुवंत अँगद सम दोऊ॥
तुम अरजुन औ भीम भुवारा। तुम बल रन-दल-मंडनहारा॥
तुम टारन भारन्ह जग जाने। तुम सुपुरुष जस करन बखाने॥
तुम बलबीर जैस जगदेऊ। तुम संकर औ मालकदेऊ॥
तुम अस मोरे बादल गोरा। काकर मुख हेरौं, बँदिछोरा? ॥
जस हनुवँत राघव बँदि छोरी। तस तुम छोरि मेरावहु जोरी॥
जैसे जरत लखाघर, साहस कीन्हा भीउँ।
जरत खंभ तस काढ़हु, कै पुरुषारथ जीउ॥ ५॥

राम लखन तुम दैत-सँघारा। तुमहीं घर बलभद्र भुवारा॥
तुमही द्रोन और गंगेऊ। तुम्ह लेखौं जैसे सहदेऊ॥
तुमही युधिष्ठिर औ दुरजोधन। तुमहि नील नल दोउ संबोधन॥
परसुराम राघव तुम जोधा। तुम्ह परतिज्ञा तें हिय बोधा॥
तुमहि सत्रुहन भरत कुमारा। तुमहि कृस्न चानूर सँघारा॥
तुम परदुम्न औ अनिरुध दोऊ। तुम अभिमन्यु बोल सब कोऊ॥
तुम्ह सरि पूज न विक्रम साके। तुम हमीर हरिचँद सत आँके॥
जस अति संकट पंडवन्ह भएउ भीवँ बँदि छोर।
तस परबस पिउ काढ़हु, राखि लेहु भ्रम मोर"॥ ६॥

CENTRAL LIBRARY

गोरा बादल बीरा लीन्हा। जस हनुवंत अंगद बर कीन्हा॥
सजहु सिंघासन, तानहु छातू। तुम्ह माथे जुग जुग अहिबातू॥
कँवल-चरन भुइँ धरि दुख पावहु। चढ़ि सिंघासन मँदिर सिधावहु।
सुनतहि सूर कँवल हिय जागा। केसरि-बरन फूल हिय लागा॥
जनु निसि महँ दिन दीन्ह देखाई। भा उदोत, मसि गई बिलाई॥
चढ़ी सिंघासन झमकति चली। जानहुँ चाँद दुइज निरमली॥
औ सँग सखी कुमोद तराईं। ढारत चँवर मँदिर लेइ आईं॥
देखि दुइज सिंघासन संकर धरा लिलाट।
कँवल-चरन पदमावती लेइ बैठारी पाट॥ ७॥

--मलिक मुहम्मद जायसी

गोरा-बादल-युद्ध-यात्रा-खंड

बादल केरि जसोवै माया। आइ गहेसि बादल कर पाया॥
बादल राय! मोर तुइ बारा। का जानसि कस होइ जुझारा॥
बादसाह पुहुमी-पति राजा। सनमुख होइ न हमीरहि छाजा॥
छत्तिस लाख तुरय दर साजहिं। बीस सहस हस्ती रन गाजहिं॥
जबहीं आइ चढ़ै दल ठटा। दीखत जैसि गगन घन-घटा॥
चमकहिं खड़ग जो बीजु समाना। घुमरहिं गलगाजहिं नीसाना॥
बरिसहिं सेल बान घनघोरा। धीरज धीर न बाँधिहि तोरा॥
जहाँ दलपती दलि मरहिं, तहाँ तोर का काज?।
आजु गवन तोर आवै, बैठि मानु सुख राज॥ १॥

मातु! न जानसि बालक आदी। हौं बादला सिंघ रनवादी॥
सुनि गज-जूह अधिक जिउ तपा। सिंघ क जाति रहै किमि छपा?॥
तौ लगि गाज, न गाज सिंघेला। सौंह साह सौं जुरौं अकेला॥
को मोहि सौंह होइ मैमंता। फारौं सूँड़, उखारौं दंता॥
जरौं स्वामि-सँकरे जस ढारा। पेलौं जस दुरजोधन भारा॥
अंगद कोपि पाँव जस राखा। टेकौं कटक छतीसौ लाखा॥
हनुवँत सरिस जंघ बर जोरौं। दहौं समुद्र, स्वामि-बँदि छोरौं॥

सो तुम, मातु जसोवै! मोहिं न जानहु बार।
जहँ राजा बलि बाँधा छोरौं पैठि पतार॥ २॥

बादल गवन जूझ कर साजा। तैसेहि गवन आइ घर बाजा॥
का बरनौं गवने कर चारू। चंद्रबदनि रचि कीन्ह सिंगारू॥
माँग मोति भरि सेंदुर पूरा। बैठ मयूर, बाँक तस जूरा॥
भौंहैं धनुक टकोरि परीखे। काजर नैन, मार सर तीखे॥
घालि कचपची टीका सजा। तिलक जो देख ठाँव जिउ तसा॥
मनि-कुंडल डोलैं दुइ स्रवना। सीस धुनहिं सुनि सुनि पिउगवना॥
नागिनि अलक, झलक उर हारू। भएउ सिंगार कंत बिनु भारू॥

गवन जो आवा पँवरि महँ, पिउ गवने परदेस।
सखी बुझावहि किमि अनल, बुझै सो केहि उपदेस?॥ ३॥

मानि गवन सो घूँघुट काढ़ी। बिनवै आइ बार भइ ठाढ़ी॥
तीखे हेरि चीर गहि ओढ़ा। कंत न हेर, कीन्ह जिउ पोढ़ा॥
तब धनि बिहँसि कीन्ह सहुँ दीठी। बादल ओहि दीन्हि फिरि पीठी॥
मुख फिराइ मन अपने रीसा। चलत न तिरिया कर मुख दीसा॥
भा मिन-मेष नारि के लेखे। कस पिउ पीठि दीन्हि मोहिं देखे॥
मकु पिउ दिष्टि समानेउ सालू। हुलसी पीठि कढ़ावौं फालू॥
कुच तूँबी अब पीठि गड़ोवौं। गहै जो हूकि, गाढ़ रस धोवौं॥

रहौं लजाइ त पिउ चलै, गहौं त कह मोहिं ढीठ।
ठाढ़ि तेवानि कि का करौं, दूभर दुऔ बईठ॥ ४॥

CENTRAL LIBRARY

लाज किए जौ पिउ नहिं पावौं। तजौं लाज कर जोरि मनावौं॥
करि हठ कंत जाइ जेहि लाजा। घूँघुट लाज आव केहि काजा॥
तब धनि बिहँसि कहा गहि फेंटा। नारि जो बिनव कंत न मेटा॥
आजु गवन हौं आई, नाहाँ! तुम न, कंत! गवनहु रन माहाँ॥
गवन आव धनि मिल के ताईं। कौन गवन जौ बिछुरै साईं॥
धनि न नैन भरि देखा पीऊ। पिउ न मिला धनि सौं भरि जीऊ॥
जहँ अस आस-भरा है केवा। भँवर न तजै बास-रसलेवा॥
पायँन्ह धरा लिलाट धनि, बिनय सुनहु, हो राय!
अलक परी फँदवार होइ, कैसेहु तजै न पाय॥ ५॥

छाँड़ु फेंट धनि! बादल कहा। पुरुष-गवन धनि फेंट न गहा॥
जौ तुइ गवन आइ, गजगामी! गवन मोर जहँवाँ मोर स्वामी॥
जौ लगि राजा छूटि न आवा। भावै बीर, सिंगार न भावा॥
तिरिया भूमि खड़ग कै चेरी। जीत जो खड़ग होइ तेहि केरी॥
जेहि घर खड़ग मोंछ तेहिं गाढ़ी। जहाँ न खड़ग मोंछ नहिं दाढ़ी॥
तब मुहँ मोंछ, जीउ पर खेलौं। स्वामि-काज इंद्रासन पेलौं॥
पुरुष बोलि कै टरै न पाछू। दसन गयंद, गीउ नहिं काछू॥
तुइ अबला, धनि! कुबुधि-बुधि, जानै काह जुझार।
जेहि पुरुषहि हिय बीररस, भावै तेहिं न सिंगार॥ ६॥

जौ तुम चहहु जूझि, पिउ! बाजा। कीन्ह सिंगार-जूझ मैं साजा॥
जोबन आइ सौंह होइ रोपा। बिखरा बिरह, काम-दल कोपा॥
बहेउ बीररस सेंदुर माँगा। राता रुहिर खड़ग जस नाँगा॥
भौंहैं धनुक नैन-रस साधे। काजर पनच, बरुनि बिष-बाँधे॥
जनु कटाछ स्यों सान सँवारे। नखसिख बान मेल अनियारे॥
अलक फाँस गिउ मेल असूझा। अधर अधर सौं चाहहिं जूझा॥
कुंभस्थल कुच दोउ मैमंता। पैलौं सौंह, सँभारहु, कंता!॥
कोप सिंगार, बिरह-दल टूटि होइ दुइ आध।
पहिले मोहि संग्राम कै करहु जूझ कै साध॥ ७॥

एकौ बिनति न मानै नाहाँ। आगि परी चित उर धनि माहाँ॥
उठा जो धूम नैन करुवाने लाने। लागे परै आँसु झहराने॥
भीजे हार, चीर, हिय चोली। रही अछूत कंत नहिं खोली॥
भीजीं अलक छुए कटि-मंडन। भीजे कँवल भँवर सिर-फुंदन॥
चुइ चुइ काजर आँचर भीजा। तबहुँ न पिउ कर रोवँ पसीजा॥
जौ तुम कंत! जूझ जिउ काँधा। तुम किय साहस, मैं सत बाँधा॥
रन संग्राम जूझि जिति आवहु। लाज होइ जौ पीठि देखावहु॥
तुम्ह पिउ साहस बाँधा, मैं दिय माँग सेंदूर।
दोउ सँभारे होइ सँग, बाजै मादर तूर॥ ८॥

--मलिक मुहम्मद जायसी

सूरदास के पद

राग विलावल

नंद घरनि आनंदभरी सुत स्याम खेलावै।
कबहिं घुटुरुवनि चलहिंगे कहि विधिहिं मनावै॥
कबहिं दंतुली द्वै दूध की देखौं इन नैननि।
कबहिं कमलमुख बोलिहै सुनिहौं उन बैननि॥
चूमति कर पग अधर पुनि लटकति लट चूमति।
कहा बरनि 'सूरज' कहै कहां पावै सो मति॥१

राग विलावल

जसुमति मन अभिलाष करै।
कब मेरो लाल घुटुरुवन रेंगै कब धरनी पग द्वैक धरै॥

कब द्वै दंत दूध के देखौं कब तुतरे मुख बैन झरै।
कब नंदहि कहि बाबा बोलै कब जननी कहि मोंहि ररै॥
कब मेरो अंचरा गहि मोहन जोइ सोइ कहि मोसों झगरै।
कब धौं तनक तनक कछु खैहै अपने कर सों मुखहि भरै॥
कब हंसि बात कहैगो मोसों छबि पेखत दुख दूरि टरै।
स्याम अकेले आंगन छांड़ि आपु गई कछु काज घरै॥
एहि अंतर अंधवाइ उठी इक गरजत गगन सहित थहरै।
'सूरदास' ब्रज लोग सुनत धुनि
जो जहं तहं सब अतिहि डरै॥२

राग धनाश्री

हरि किलकत जसुदा की कनियां।
निरखि निरखि मुख हंसति स्याम
को मो निधनी के धनियां॥
अति कोमल तन स्याम को बार बार पछितात।
कैसे बच्यो जाउं बलि तेरी तृनावर्त के घात॥
ना जानौ धौं कौन पुन्य तें को करि लेत सहाइ।
वैसो काम पूतना कीनो इहि ऐसो करचो आइ॥
माता दुखित जानि हरि बिहंसे नान्हीं दंतुरि दिखाई।
'सूरदास' प्रभु माता चित तें दुख डारचो बिसराई॥३

राग धनाश्री

कहां लौं बरनौ सुन्दरताई।
खेलत कुंवर कनक आंगन में नैन निरखि छबि छाई॥
कुलहि लसत सिर स्याम सुभग
अति बहुबिधि सुरंग बनाई।
मानो नव घन ऊपर राजत मघवा धनुष चढ़ाई॥

अति सुदेस मृदु चिकुर हरत
मन मोहन मुख बगराई।
मानो प्रगट कंज पर मंजुल अलि अवली फिरि आई॥
नील सेत पर पीत लालमनि लटँकन भाल लुनाई।
सनि गुरु-असुर देवगुरु मिलि
मनौ भौम सहित समुदाई॥
दूध दंत दुति कहि न जाति अति अदभुत एक उपमाई।
किलकत हंसत दुरत प्रगटत मनौ घन में बिज्जु छपाई॥
खंडित बचन देत पूरन सुख अलप जलप जलपाई।
घुटुरुन चलत रेनु तनु मंडित 'सूरदास' बलिजाई॥४

राग बिलावल

सिखवत चलन जसोदा मैया।
अरबराइ कर पानि गहावत डगमगाइ धरनी धर पैंया॥
कबहुंक सुंदर बदन बिलोकति
उर आनंद भरि लेति बलैया।
कबहुंक बलको टेरि बुलावति
इहि आंगन खेलौ दोउ भैया॥
कबहुंक कुल देवता मनावति
चिरजीवैं मेरो बाल कन्हैया।
'सूरदास' प्रभु सब सुखदायक
अति प्रताप बालक नंदरैया॥५

राग बिलावल

बाल गोपाल खेलौ मेरे तात।
बलि बलि जाउं मुखारबिंद की
अमी बचन बोलत तुतरात॥

उनिंदे नयन बिसाल की सोभा
कहत न बनि आवै कछु बात।
दूरि खरे सब सखा बोलावत
नयन मोरि उठि आए प्रभात॥
दुहुं कर माठ गहे नंदनंदन
छिटकि बूंद दधि परत अघात।
मानहु गजमुकता मरकत पर सोभित सुभग सांवरे गात॥
जननी प्रति मांगत मनमोहन दै माखन रोटी उठि प्रात।
लोटत पुहुमि 'सूर' सुंदर घन
चारिपदारथ जाके हात॥६

राग बिलावल

सखि री नंदनंदन देखु।
धूरि धूसरि जटा जूटनि हरि किए हर भेषु॥
नीलपाट पिरोइ मनिगन फनिस धोखो जाइ।
खुनखुना कर हंसत मोहन नचत डौंरु बजाइ॥
जलजमाल गोपाल पहिरे कहौं कहा बनाइ।
मुंडमाला मनो हर गर ऐसि सोभा पाइ॥)
स्वातिसुत माला बिराजत स्यामतन यों भाइ।
मनो गंगा गौरि डर हर लिए कंठ लगाइ॥
केहरी के नखहि निरखत रही नारि बिचारि।
बाल ससि मनौ भालते लै उर धरचो त्रिपुरारि॥
देखि अंग अनंग डरप्यो नंदसुत को जान।
सूर के हियरे बसो यह स्याम सिव को ध्यान॥७

राग धनाश्री

कजरी को पय पियहु लला तेरी चोटी बढ़ै।
सब लरिकन में सुन सुन्दर सुत तो श्री अधिक चढ़ै॥

BCU 2157

CENTRAL LIBRARY

जैसे देखि और ब्रज बालक त्यौं बल बयस बढ़ै।
कंस केसि बक वैरिन के उर अनुदिन अनल उढ़ै॥
यह सुनि कै हरि पीवन लागे, ज्यौं त्यौं लियो पढ़ै।
अंचवत पै तातो जब लाग्यो रोवत जीभ गढ़ै॥
पुनि, पीवत ही कच टकटोवै झूठै जननि रढ़ै।
'सूर' निरखि मुख हंसत जसोदा सो सुख मुख न कढ़ै॥८

राग रामकली

मैया कबहिं बढ़ैगी चोटी।
किती बार मोहिं दूध पियत भई यह अजहूं है छोटी॥
तू जो कहति बल की बेनी ज्यों ह्वै है लांबी मोटी।
काढ़त गुहत न्हवावत ओंछत नागिनि सी भुंइ लोटी॥
काचो दूध पियावत पचि पचि देत न माखन रोटी।
'सूर' स्याम चिरजिव दोउ
भैया हरि हलधर की जोटी॥९

राग देवगान्धार

कहन लागे मोहन मैया मैया।
पिता नंद सों बाबा अरु हलधर सों भैया भैया॥
ऊंचे चढ़ि चढ़ि कहत जसोदा लै लै नाम कन्हैया।
दूरि कहूं जिनि जाहु लला रे मारैगी काहु की गैया॥
गोपी ग्वाल करत कौतूहल घर घर लेत बलैया।
मनि खंभन प्रतिबिंब बिलोकत नचत कुंवर निज पैया॥
नंद जसोदाजी के उर तें इह छबि अनत जनैया।
'सूरदास' प्रभु तुमरे दरस की चरनन की बलिगइया॥१०

165619

राग कान्हरो

ठाढ़ी अजिर जसोदा अपने
हरिहि लिये चँदा देखरावत।
रोवत कत बलि जाउं तुम्हारी
देखौं धौं भरि नैन जुड़ावत॥
चितै रहे तब आपुन ससि तन
अपनें कर लै लै जु बतावत।
मीठो लगत किधौं यह खाटो
देखत अति सुंदर मन भावत॥११

राग विलावल

जागिये ब्रजराज कुंवर कमल कुसुम फूले।
कुमुद बृन्द सकुचित भए भृंग लता मूले॥
तमचुर खग रोर सुनहु बोलत बनराई।
रांभति गो खरिकन में बछरा हित धाई॥
बिधु मलीन रविप्रकास गावत नर-नारी।
'सूर' स्याम प्रात उठौ अंबुज कर धारी॥१२

राग गौरी

मैया मोहि दाऊ बहुत खिझायो।
मोसों कहत मोल को लीनो तोहि जसुमति कब जायो॥
कहा कहौं एहि रिस के मारे खेलन हौं नहि जातु।
पुनि पुनि कहत कौन है माता को है तुमरो तातु॥
गोरे नंद जसोदा गोरी तुम कत स्याम सरीर।
चुटकी दैदै हंसत ग्वाल सब सिखै देत बलबीर॥
तू मोही को मारन सीखी दाउहि कबहुं न खीझै।
मोहन को मुख रिस समेत लखि जसुमति सुनि सुनि रीझै॥

सुनहु कान्ह बलभद्र चवाई जनमत ही को धूत।
'सूर' स्याम मोहि गोधन की सौं हौं माता तू पूत ॥१३

राग गौरी

खेलन अब मेरी जात बलैया।
जबहि मोहि देखत लरिकन संग तबहि खिझत बल भैया॥
मोसों कहत पूत बसुदेव को देवकी तेरी मैया।
मोल लियो कछु दै बसुदेव को करि करि जतन बढ़ैया॥
अब बाबा कहि कहत नंद सों जसुमति को कहै मैया।
ऐसे कहि सब मोहि खिझावत तब उठि चलौं खिसैया॥
पाछे नंद सुनत हैं ठाढ़े हंसत हंसत उर लैया।
'सूर' नंद बलरामहि धिरयो सुनि मन हरष कन्हैया॥१४

राग सारंग

जेंवत स्याम नंद की कनियां।
कछुक खात कछु धरनि गिरावत छबि निरखत नंदरनियां॥
बरी बरा बेसन बहु भांतिन व्यंजन बहु अनगनियां
डारत खात लेत अपने कर रुचि मानत दधि-दनियां।
मिसिरी दधि माखन मिस्रित करि मुख नावत छबिधनियां
आपुन खात नंद-मुख नावत सो सुख कहत न बनियां॥
जो रस नंद जसोदा बिलसत सो नहि तिहूं भुवनियां।
भोजन करि नंद अंचवन कीन्हो मांगत 'सूर' जुठनियां॥१५

—सूरदास

भ्रमरगीत

राग धनाश्री

जीवन मुँह चाही को नीको।
दरस परस दिनरात करति हैं कान्ह पियारे पी को॥
नयनन मूँदि मूँदि किन देखौ बंध्यौ ज्ञान पोथी को।
आछे सुंदर स्याम मनोहर और जगत सब फीको॥
सुनौ जोग को का लै कीजै जहाँ ज्यान है जी को?
खाटी मही नहीं रुचि मानै सूर खवैया घी को॥

राग मलार

हमरे कौन जोग व्रत साधै?
मृगत्वच, भस्म, अधारि, जटा को को इतनो अवराधै?
जाकी कहूँ थाह नहीं पैये, अगम अपार अगाधै।
गिरिधर लाल छबीले मुख पर इते बाँध को बाँधै?
आसन पवन विभूति मृगछाला ध्याननि को अवराधै?
सूरदास मानिक परिहरि कै राख गाँठि को बाँधै?

राग सारंग

बिलग जनि मानहु ऊधो प्यारे!
वह मथुरा काजर की कोठरि जे आवहिं ते कारे॥
तुम कारे, सुफलकसुत कारे, कारे मधुप भँवारे।
तिनके संग अधिक छवि उपजत कमलनैन मनिआरे॥
मानहु नील माटतें काढ़े लै जमुना ज्यों पखारे।
ता गुन स्याम भई कालिंदी सूर स्याम-गुन न्यारे॥

राग धनाश्री

अँखिया हरि दरसन की भूखी।
कैसे रहें रूपरसराची ये बतियाँ सुनि रूखी॥
अवधि गनत इकटक मग जोवत तब एती नहिं झूखी।
अब इन जोग-संदेसन ऊधो अति अकुलानी दूखी॥
बारक वह मुख फेरि दिखाओ दुहि पय पिवत पतूखी।
सूर सिकत हठि नाव चलाओ ये सरिता हैं सूखी॥

राग बिलावल

काहे को रोंकत मारग सूधो?
सुनहु मधुप! निर्गुन कंटक तें राजपंथ क्यों रूँधो?
कै तुम सिखै पठाए कुब्जा, कै कही स्यामघन जूधौं।
वेद पुरान सुमृति सब ढूँढ़ी जुवतिन जोग कहूँ धौं?
ताको कहा परेखो कीजै जानत छाछ न दूधो।
सूर मूर अक्रूर गए लै ब्याज निबेरत ऊधो॥

राग सारंग

प्रीति करि दीन्हीं गरे छुरी।
जैसे बधिक चुगाय कपटकन पाछे करत बुरी॥
मुरली मधुर चेंप कर काँपो मोर चंद्र ठटवारी।
बंक बिलोकनि लूक लागि बस सकी न तनहिं सम्हारी॥
तलफत छाँड़ि चले मधुवन को फिरि कै लई न सार।
सूरदास वा कलप-तरोवर फेरि न बैठी डार॥

राग धनाश्री

कोउ ब्रज बाँचत नाहिन पाती।
कत लिखि लिखि पठवत नंदनंदन कठिन बिरह की काती॥

नयन, सजल, कागद अति कोमल, कर अँगुरी अति ताती।
परसत जरैं, बिलोकत भीजैं दुहूँ भाँति दुख छाती॥
क्यों समुझैं ये अंक सूर सुनु कठिन मदन-सर-घाती।
देखे जियहिं स्यामसुंदर के रहहिं चरन दिनराती॥

राग मलार

संदेसनि मधुवन-कूप भरे।
जो कोउ पथिक गए हैं ह्याँ तें फिरि नहिं अवन करे॥
कै वै स्याम सिखाय समोधे कै वै बीच मरे?
अपने नहिं पठवत नँदनंदन हमरेउ फेरि धरे॥
मसि खूँटी कागरजल भीजे, सर दव लागि जरे।
पाती लिखें कहो क्यों करि जो पलक-कपाट अरे?

राग केदारो

उर में माखनचोर गड़े।
अब कैसहु निकसत नहिं, ऊधो! तिरछै ह्वै जु अड़े॥
जदपि अहीर जसोदानन्दन तदपि न जात छँड़े।
वहाँ बने जदुबंस महाकुल हमहिं न लगत बड़े॥
को बसुदेव, देवकी हैं को, ना जानैं औ बूझैं।
सूर स्यामसुंदर बिनु देखे और न कोऊ सूझैं॥

राग नट

मधुकर! ये नयना पै हारे।
निरखि निरखि मग कमलनयन को प्रेममगन भए भारे॥
ता दिन तें नींदौ पुनि नासी, चौंकि परत अधिकारे।
सपन तुरी जागत पुनि सोई जो हैं हृदय हमारे॥
यह निर्गुन लै ताहि बतावो जो जानैं याके सारे।
सूरदास गोपाल छाँड़ि कै चूसैं टेटी खारे॥

—सूरदास

कवितावली

(अयोध्याकाण्ड)

कीर के कागर ज्यों नृपचीर विभूषन, उप्पम अंगनि पाई।
औध तज्यौ मगबास के रूख ज्यों, पंथ के साथी ज्योंलोग-लुगाई।
संग सुबंधु, पुनीत प्रिया मनो धर्म क्रिया धरि देह सुहाई।
राजिवलोचन राम चले तजि बाप को राज बटाऊ की नाई ॥१॥

कागर-कीर ज्यों भूषन चीर सरीर लस्यो तजि नीर ज्यों काई।
मातु-पिता प्रिय लोग सबै सनमानि सुभाय सनेह सगाई।
संग सुभामिनि भाई भलो, दिन द्वै जनु औध हुते पहुनाई।
राजिवलोचन राम चले तजि बाप को राज बटाऊ की नाई ॥२॥

सिथिल सनेह कहै कौसिला सुमित्राजू सों,
मैं न लखी सौति, सखी! भगिनी ज्यौं सेई है।
कहै मोहि मैया, कहौं, "मैं न मैया; भरत की;
बलैया लैहौं, भैया! मैया तेरी कैकेयी है"।
'तुलसी' सरल भाय रघुराय माय मानी,
काय मन बानी हूं न जानी कै मतेई है।
बाम विधि मेरो सुख सिरिससुमन सम,
ताको छल-छुरी कोह-कुलिस लै टेई है ॥३॥

"कीजै कहा, जीजी जू!" सुमित्रा परि पायं कहै,
"तुलसी सहावै विधि सोई सहियतु है।
रावरो सुभाव राम जन्म ही तें जानियत,
भरत की मातु को कि ऐसो चहियतु है?
जाई राजघर, ब्याहि आई राजघर माहं,
राज-पूत पाए हूं न सुख लहियतु है।
देह सुधागेह ताहि मृगहू मलीन कियो,
ताहू पर बाहु बिनु राहु गहियतु है" ॥४॥

नाम अजामिल से खलकोटि अपार नदी भव बूड़त काढ़े।
जो सुमिरे गिरि-मेरु सिला-कन होत अजाखुर बारिधि बाढ़े॥
तुलसी जेहि के पद-पंकज तें प्रगटी तटिनी जो हरै अघ गाढ़े।
सो प्रभु स्वै सरिता तरिबे कहं मांगत नाव करारे ह्वै ठाढ़े॥५॥
एहि घाट तें थोरिक दूरि अहै कटि लौं जल-थाह दिखाइहौं जू।
परसे पगधूरि तरै तरनी, घरनी घर क्यों समझाइहौं जू?
तुलसी अवलंब न और कछू, लरिका केहि भांति जिआइहौं जू?
बरु मारिए मोहिं, बिना पग धोए, हौं नाथ न नाव चढ़ाइहौं जू॥६॥
रावरे दोष न पायँन को, पगधूरि को भूरि प्रभाव महा है।
पाहन तें बन-बाहन काठ को कोमल है, जल खाइ रहा है॥
पावन पायं पखारि कै नाव चढ़ाइहौं, आयसु होत कहा है?
तुलसी सुनि केवट के बर बैंन हंसे प्रभु जानकी ओर हहा है॥७॥
पात भरी सहरी, सकल सुत बारे बारे,
केवट की जात कछु बेद ना पढ़ाइहौं।
सब परिवार मेरो याही लगि, राजा जू,
हौं दीन बित्तहीन कैसे दूसरी गढ़ाइहौं?
गौतम की घरनी ज्यों तरनी तरैगी मेरी,
प्रभु सों निषाद ह्वैके बाद ना बढ़ाइहौं।
'तुलसी' के ईस राम रावरी सौं, सांची कहौं,
बिना पग धोए नाथ नाव ना चढ़ाइहौं॥८॥
जिनको पुनीत बारि, धारे सिर पै पुरारि,
त्रिपथगामिनि-जसु बेद कहै गाइ कै।
जिनको जोगीन्द्र मुनिवृन्द देव देह भरि,
करत बिराग जप जोग मन लाइ कै॥
'तुलसी' जिनकी धूरि परसि अहल्या तरी,
गौतम सिधारे गृह गौनो सो लिवाइ कै।
तेई पायं पाइकै चढ़ाइ नाव धोए बिनु,
ख्वैहौं न पठाव नीको ह्वै हौं न हंसाइ कै?॥९॥

प्रभुरुख पाइ कै बोलाइ बाल, घरनिहिं,
बंदि कै चरन चहुं दिसि बैठे घेरि घेरि।
छोटो सो कठौता भरि आनि पानी गंगाजू को,
धोइ पायं पीयत पुनीत बारि फेरि फेरि॥
तुलसी सराहैं ताको भाग सानुराग सुर,
बरष सुमन जय जय कहैं टेरि टेरि।
बिबुध-सनेह-सानी बानी असयानी सुनी,
हंसे राघौ जानकी लषन तन हेरि हेरि॥१०॥

पुर तें निकसीं रघुबीर बधू,
धरि धीर दये मग में डग द्वै।
झलकीं भरि भाल कनी जल की,
पुट सूख गए मधुराधर वै॥
फिरि बूझति हैं "चलनो अब केतिक,
पर्णकुटी करिहौ कित ह्वै?"
तियकीलखि आतुरता पियकी अंखियां
अति चारु चलीं जल च्वै॥११॥

जल को गए लक्खन हैं लरिका,
परिखौ पिय, छांह घरीक ह्वै ठाढ़े।
पोंछि पसेउ बयारि करौं, अरु
पांय पखारिहौं भूभुरि डाढ़े॥
'तुलसी' रघुबीर प्रिया स्रम जानि कै
बैठि बिलंब लौं कंटक काढ़े।
जानकी नाह को नेह लख्यौ,
पुलको तनु बारि बिलोचन बाढ़े॥१२॥

ठाढ़े हैं नौ द्रुम डार गहे,
धनु कांधे धरे, कर सायक लै।
बिकटी भ्रकुटी बडरी अंखियां,
अनमोल कपोलन की छबि है॥

CALCUTTA UNIVERSITY CENTRAL LIBRARY

CENTRAL LIBRARY

'तुलसी' अस मूरति आनि हिये
　　जड़ डारिहौं प्रान निछावरि कै।
स्रम-सीकर सांवरि देह लसै
　　मनो रासि महा तम तारक मै॥१३॥

जलज-नयन, जलजानन, जटा है सिर
　　जोबन उमंग अंग उदित उदार हैं।
साँवरे गोरे के बीच भामिनी सुदामिनी सी,
　　मुनिपट धरे, उर फूलनि के हार हैं॥
करनि सरासन सिलीमुख, निषंग कटि,
　　अतिही अनूप काहू भूप के कुमार हैं।
'तुलसी' बिलोकि कै तिलोक के तिलक तीनि,
　　रहे नरनारी ज्यों चितेरे चित्रसार हैं॥१४॥

आगे सोहै सांवरो कुंवर, गोरो पाछे पाछे,
　　आछे मुनि वेष धरे लाजत अनंग हैं।
बान बिसिषासन; बसन बन ही के कटि,
　　कसे हैं बनाई, नीके राजत निषंग हैं।
साथ निसिनाथमुखी पाथनाथ-नन्दिनी सी,
　　'तुलसी' बिलोके चित लाइ लेत संग हैं।
आनन्द उमंग मन, जोबन उमंग तन,
　　रूप की उमंग उमगत अंग अंग हैं॥१५॥

सुन्दर बदन, सरसीरुह सुहाए नैन,
　　मंजुल प्रसून माथे मुकुट जटनिके।
अंसनि सरासन लसत, सुचि कर सर,
　　तून कटि, मुनिपट लटक पटनि के॥
नारि सुकुमारि संग, जाके अंग उबटि कै,
　　बिधि बिरचे बरूथ विद्युत छटनि के।
गोरे को बरन देखे सोनो न सलोनो लागै,
　　सांवरे बिलोके गर्व घटत घटनि के॥१६॥

बल्कल बसन, धनु-बान पानि, तून कटि,
रूप के निधान, घन-दामिनी-वरन हैं।
'तुलसी' सुतीय संग सहज सुहाए अंग,
नवल कंवल हू तैं कोमल चरन हैं॥
औरै सो बसन्त, और रति, औरै रतिपति,
मूरति विलोके तन-मन के हरन हैं।
तापस वेषै बनाइ, पथिक पथै सुहाइ,
चले लोक-लोचननि सुफल करन हैं॥१७॥

बनिता बनि स्यामलगौर के बीच,
बिलोकहु, री सखी! मोहिं सी ह्वै।
मग जोग न, कोमल क्यों चलिहैं?
सकुचात मही पद-पंकज छ्वै॥
'तुलसी' सुनि ग्रामबधू बिथकीं,
पुलकीं तन औ चले लोचन च्वै।
सब भांति मनोहर मोहन रूप,
अनूप हैं भूप के बालक द्वै॥१८॥

सांवरे गोरे सलोने सुभाय,
मनोहरता जिति मैन लियो है।
बान कमान निषंग कसे,
सिर सोहैं जटा, मुनि वेष कियो है॥
संग लिये बिधुबैनी बधू,
रति को जेहि रंचक रूप दियो है।
पांयन तौ पनही न, पयादेहि
क्यों चलिहैं? सकुचात हियो है॥१९॥

रानी मैं जानी अजानी महा,
पवि पाहन हू ते कठोर हियो है।
राजहु काज अकाज न जान्यो,
कह्यो तिय को जिन कान कियो है।

ऐसी मनोहर मूरति ये,
बिछुरे कैसे प्रीतम लोग जियो है ?
आंखिनमें, सखि ! राखिबे जोग,
इन्हें किमि कै बनबास दियो है ॥२०॥
सीस जटा, उर बाहु बिसाल,
बिलोचन लाल, तिरीछीसी भौंहैं।
तून सरासन बान धरे,
'तुलसी' बन मारग में सुठि सोहैं॥
सादर बारहि बार सुभाय चितै
तुम त्यों हमरो मन मोहैं।
पूछति ग्रामबधू सियसों "कहौ सांवरे से,
सखि रावरे को हैं ?" ॥२१॥
सुनि सुन्दर बैन सुधारस-साने,
सयानी हैं जानकी जानी भली।
तिरछे करि नैन, दै सैन तिन्हैं
समुझाइ कछू मुसुकाइ चली॥
'तुलसी' तेहि औसर सोहैं सबै
अवलोकति लोचन-लाहु अली।
अनुराग-तड़ाग में भानु उदै
बिगसीं मनो मंजुल कंज-कली॥२२॥
धरि धीर कहैं "चलु देखिय
जाइ जहां सजनी रजनी रहि हैं।
कहिहै जग पोच, न सोच कछू,
फल लोचन आपन तौ लहि हैं॥
सुख पाइहैं कान सुने बतियां,
कल आपुस में कछु पै कहि हैं।
'तुलसी' अति प्रेम लगीं पलकैं,
पुलकीं लखि राम हिये महिहैं॥२३॥

पद कोमल, स्यामल गौर कलेवर,
राजत कोटि मनोज लजाए।
कर बान सरासन, सीस जटा,
सरसीरुह लोचन सो न सुहाए॥
जिन देखे, सखी! सतभायहु तें
'तुलसी' तिनतौ मन फेरि न पाए।
यहि मारग आजु किसोरबधू
बिधु-बैनीसमेत सुभाय सिधाए॥२४॥

मुखपंकज, कंजबिलोचन, मंजु,
मनोज-सरासन सी बनी भौंहें।
कमनीय कलेवर, कोमल,
स्यामल गौर किसोर, जटा सिर सोहैं॥
'तुलसी' कटि तून, धरे धनु-बान,
अचानक दीठि परी तिरछौंहें।
केहिभांतिकहौं, सजनी! तोहिसों,
मृदु मूरति द्वै निवसीं मनमोहें॥२५॥

प्रेम सों पीछे तिरीछे प्रियाहि
चितै चितु दै, चले लै चित चोरे।
स्याम सरीर पसेउ लसै, हुलसै
'तुलसी' छबि सो मन मोरे।
लोचन लोल चलैं भृकुटी,
कल काम-कमानहु सो तृन तोरे।
राजत राम कुरंग के संग,
निषंग कसे, धनु सों सर जोरे॥२६॥

सर चारिक चारु बनाइ कसे कटि,
पानि सरासन सायक लै।
बन खेलत राम फिरैं मृगया,
'तुलसी' छबि सो बरनै किमि कै?

अवलोकि अलौकिक रूप मृगीमृग
चौंकि चकें चितवें चित दै।
न डगें न भगें जिय जानि सिलीमुख
पंच घरे रतिनायक है ॥२७॥

—तुलसीदास

दोहावली

रामनाम मणि दीप धरु, जीह देहरी द्वार।
तुलसी भीतर बाहिरो, जो चाहसि उजियार ॥१
रामनाम को कल्पतरु, कलि कल्याण निवास।
जो सुमिरत भयो भाग ते तुलसी तुलसीदास ॥२
मीठो अरु कठवति भरो, रौताई अरु षेम।
स्वारथ परमारथ सुलभ, रामनाम के प्रेम ॥३
हम लखु हर्माहि हमार लखु हम हमार के बीच।
तुलसी अलर्खाहि का लखहि, रामनाम जपु नीच ॥४
प्रीति राम सों नीतिपथ, चलिय राम रिस जीति।
तुलसी संतन के मते, इहै भक्ति की रीति ॥५
करमठ कठमलिया कहै, ज्ञानी ज्ञान विहीन।
तुलसी त्रिपथ विहायगो, राम दुआरे दीन ॥६
शंकरप्रिय मम द्रोही, शिव द्रोही मम दास।
ते नर करहि कल्प भरि घोर नरक महँ बास ॥७
तन विचित्र कायर बचन, अहि अहार मन घोर।
तुलसी हरि भये पक्षधर, ताते कह सब मोर ॥८

जो संपति शिव रावणहिं दीन दिये दशमाथ।
सो संपदा विभीषणहिं, सकुचि दीन्ह रघुनाथ ॥९

ब्रह्म जो व्यापक बिरज अज, अकल अनीह अभेद।
से कि देह धरि होहिं नर जाहि न जानत वेद ॥१०

सहज सरल रघुबर वचन, कुमति कुटिल करि जान।
चलै जोंक जिमि बक्र गति, यद्यपि सलिल समान ॥११

ज्ञान कहै अज्ञान बिनु, तम बिनु कहै प्रकास।
निरगुण कहै जो सगुण बिनु, सो गुरु तुलसीदास ॥१२

जन्मपत्रिका बर्त्तिकै, देखहु मनहि बिचारि।
दारुण बैरी मीचु के, बीच बिराजति नारि ॥१३

ग्रह गृहीत पुनि बातवश, त्यहि पुनि बीछी मार।
ताहि पियाई बारुणी, कहहु कौन उपचार ॥१४

एक भरोसो एक बल, एक आस विश्वास।
एक राम घनश्याम हित, चातक तुलसीदास ॥१५

बरसि परुष पाहन पयद, पंखकरौं दुइ टूक।
तुलसी परा न चाहिये, चतुर चातकहिं चूक ॥१६

उपल बरसि गरजत तरजि, डारत कुलिश कठोर।
चितै कि चातक मेघ तजि, कबहुँ दूसरी ओर ॥१७

उत्तम मध्यम नीचगति पाहन सिकता पानि।
प्रीति परीक्षा तिहुँन को, बैर व्यतिक्रम जानि ॥१८

बसि कुसंग चह सुजनता, ताकी आस निरास।
तीरथ हू को नाम भो, गया मगह के पास ॥१९

जड़ चेतन गुण दोषमय, विश्व कीन्ह करतार।
संत हंस गुण गहहिं पय, परिहरि वारि बिकार ॥२०

—तुलसीदास

रामचन्द्रिका

(सुंदरकांड)

उदधि नाकपति-शत्रु को उदित जानि बलवन्त।
अंतरिच्छ ही लच्छि पद, अच्छ छुयो हनुमंत ॥१॥
बीच गये सुरसा मिली, और सिंहिका नारि।
लीलि लियो हनुमंत तिहि, कढ़े उदर कहँ फारि ॥२॥

(तारक छंद)

कछु राति गये करि दंश दशा सी।
पुर माँझ चले वनराज विलासी॥
जब हीं हनुमंत चले तजि शंका।
मग रोकि रही तिय ह्वै तब लंका ॥३॥

हनुमान-लंका-संवाद

लंका—कहि मोहि उलंघि चले तुम को हौ?
अति सूच्छम रूप धरे मन मोहौ!
पठये केहि कारण, कौन चले हौ?
सुर हौ किधौं कोऊ सुरेश भले हौ ॥४॥
हनुमान्—हम वानर हैं रघुनाथ पठाये।
तिनकी तरुनी अवलोकन आये।
लंका—हति मोहि महामति भीतर जैए।
हनुमान्—तरुणीहि हते कब लौं सुख पैए ॥५॥
लंका—तुम मारेहि पै पुर पैठन पैहौ।
हठ कोटि करौ घरहीं फिरि जैहौ॥
हनुमंत बली तेहि थापर मारी।
तजि देह भई तब ही वर नारी ॥६॥

लंका--(चौ) धनदपुरी हौं रावन लीनी।
बहु बिधि पापन के रस भीनी॥
चतुरानन चित चिंतन कीन्हो।
बर करुणा करि मो कहँ दीन्हो॥७॥
जब दसकंठ सिया हरि लैहैं।
हरि हनुमंत बिलोकन ऐहैं॥
जब वह तोहि हतै तजि संका।
तब प्रभु होइ बिभीषण लंका॥८॥
चलन लगौ जबही तब कीजौ।
मृतकशरीरहि पावक दीजौ॥
यह कहि जात भई वह नारी।
सब नगरी हनुमंत निहारी॥९॥

रावण-शयनागार

तब हरि रावण सोवत देख्यो।
मणिमय पलका की छबि लेख्यो॥
तहँ तरुनी बहु भाँतिन गावैं।
बिच बिच आवझ बीन बजावैं॥१०॥
मृतक चिता पर मानहु सोहैं।
चहुँ दिशि प्रेतवधू मन मोहैं॥
जहँ जहँ जाइ तहाँ दुख दूनो।
सिय बिन है सिगरी घर सूनो॥११॥

(भुजंगप्रयात छंद)

कहूँ किन्नरी किन्नरी लै बजावैं।
सुरी आसुरी बाँसुरी गीत गावैं॥
कहूँ यक्षिणी पक्षिणी को पढ़ावैं।
नगी-कन्यका पन्नगी को नचावैं॥१२॥

पियें एक हाला गुहैं एक माला।
बनी एक बाला नचैं चित्रशाला॥
कहूँ कोकिला, कोक की कारिका को।
पढ़ावैं सुआ लै सुकी सारिका को॥१३॥

फिर्‌यो देखिकै राजशाला सभा को।
रह्यो रीझिकै बाटिका की प्रभा को॥
फिर्‌यो बीर चौहूँ चितै शुद्ध गीता।
बिलोकी भली सिंसिपा-मूल सीता॥१४॥

सीता-दर्शन

धरे एक बेनी मिली मैल सारी।
मृणाली मनो पंक सौं काढ़ि डारी॥
सदा रामनामै ररै दीन बानी।
चहूँ ओर हैं राकसी दुःखदानी॥१५॥

ग्रसी बुद्धि सी चित्त चिंता नो मानो।
किधौं जीभ दंतावली में बखानो॥
किधौं घेरिकै राहु नारीन लीनी।
कला चंद्र की चारु पीयूष भीनी॥१६॥

किधौं जीव की जोति मायान लीनी।
अविद्यान के मध्य विद्या प्रवीनी॥
मनो शंबरस्त्रीन मैं काम बामा।
हनूमान ऐसी लखी राम-रामा॥१७॥

तहाँ देव-द्वेषी दसग्रीव आयो।
सुन्यो देवि सीता महा दुःख पायो॥
सबै अंग लै अंग ही मैं दुरायो।
अधोदृष्टि कै अश्रुधारा बहायो॥१८॥

रावण-सीता-संवाद

रावण—सुनो देवि मो पै कछू दृष्टि दीजै।
इतो सोच तौ राम काजे न कीजै॥
बसैं दंडकारण्य देखैं न कोऊ।
जो देखैं महा बावरो होय सोऊ॥१९॥
कृतघ्नी कुदाता कुकन्याहि चाहै।
हितू नग्न मुंडीन ही को सदा है॥
अनाथै सुन्यौ मैं अनाथानुसारी।
बसैं चित्त दंडी जटी मुंडधारी॥२०॥
तुम्हैं देवि दूषैं हितू ताहि मानै।
उदासीन तोसों सदा ताहि जानै॥
महानिर्गुणी नाम ताको न लीजै।
सदा दास मोपै कृपा क्यों न कीजै॥२१॥
अदेवी नृदेवीन की होहु रानी।
करैं सेव बानी मघोनी मृडानी॥
लिये किन्नरी किन्नरी गीत गावैं।
सुकेसी नचैं उर्वशी मान पावैं॥२२॥

(मालिनी छंद)

सीता—तृण बिच दै बोली सीय गंभीर बानी।
दसमुख सठ को तू? कौन की राजधानी?॥
दसरथसुतद्वेषी रुद्र ब्रह्मा न भासै।
निसिचर बपुरा तू क्यों नस्यौ मूल नासै॥२३॥
अतितनु धनुरेखा नेक नाकी न जाकी।
खल खर सर धारा क्यौं सहै तिच्छ ताकी॥
बिड़कन घन घूरे भच्छि क्यों बाज जीवै?
सिवसिर ससि श्री को राहु कैसे सो छीवै॥२४॥

उठि उठि सठ ह्याँ तैं भागु तौ लौं अभागे।
मम बचन बिसर्पी सर्प जौ लौं न लागे॥
विकल सकुल देखौं आसु ही नाश तेरौ।
निपट मृतक तोकौं रोष मारै न मेरौ॥२५॥
(दो०) अवधि दई द्वै मास की, कह्यो राच्छसिन बोलि।
ज्यौं समुझै समुझाइयौ, युक्ति-छुरी सौं छोलि॥२६॥

मुद्रिका-प्रदान

(चामर छंद)

देखि देखि कै असोक राजपुत्रिका कह्यौ।
देहि मोहि आगि तैं जो अंग आगि ह्वै रह्यौ॥
ठौर पाइ पौनपुत्र डारि मुद्रिका दई।
आसपास देखि कै उठाय हाथ कै लई॥२७॥

(तोमर छंद)

जब लगी सियरी हाथ। यह आगि कैसी नाथ॥
यह कह्यौ लषि तब ताहि। मनि-जटित मुंदरी आहि॥२८॥
जब बाँचि देख्यौ नाँउ। मन परचो संभ्रम भाउ॥
आबाल ते रघुनाथ। यह धरी अपने हाथ॥२९॥
बिछुरी सो कौन उपाउँ। केहि आनियो यहि ठाउँ॥
सुधि लहौं कौन उपाउँ। अब काहि बूझन जाउँ॥३०॥
चहुँ ओर चितै सत्रास। अवलोकियौ आकास।
तहँ शाख बैठो नीठि। तब परचो वानर डीठि॥३१॥

सीता-हनुमान्-संवाद

तब कह्यो, "को तू आहि। सुर असुर मोतन चाहि॥
कै पच्छ, पच्छबिरूप। दसकंठ वानर रूप॥३२॥

कहि आपनौ तू भेद। न तु चित्त उपजत खेद ॥
कहि बेगि बानर, पाप। न तु तोहि देहौं शाप" ॥
तब वृच्छ शाखा रूमि। कपि उतरि आयौ भूमि ॥३३॥

(पद्धटिका छंद)

कर जोरि कह्यौ, 'हौं पवन-पूत।
जिय जननि जानु रघुनाथ दूत' ॥
'रघुनाथ कौन?' 'दशरत्थ नंद।'
'दशरत्थ कौन?' 'अज-तनय चंद' ॥३४॥
'केहि कारण पठये यहि निकेत?'
'निज देन लेन संदेश हेत ॥'
'गुन रूप सील सोभा सुभाउ।
कछु रघुपति के लच्छन बताउ' ॥३५॥
'अति यदपि सुमित्रा-नंद भक्त।
अति सेवक हैं अति सूर सक्त ॥
अरु यदपि अनुज तीन्यौ समान।
पै तदपि भरत भावत निदान ॥३६॥
ज्यौं नारायण उर श्री बसंति।
त्यौं रघुपति उर कछु द्युति लसंति ॥
जग जितनें हैं सब भूमि भूप।
सुर असुर न पूजैं राम रूप' ॥३७॥

(निशिपालिका छंद)

सीता—मोहि परतीति यहि भाँति नहि आवई।
प्रीति कहि धौं सु नर बानरनि क्यों भई ॥
बात सब बर्णि परतीति हरि त्यौं दई।
आँसु अन्हवाइ उर लाइ मुँदरी लई ॥३८॥

(दो०) आँसु बरषि हियरे हरपि, सीता सुखद सुभाइ।
निरखि निरखि पिय मुद्रिकहि, बरनति है बहु भाइ ॥३९॥

मुद्रिका-वर्णन

(पद्धटिका छंद)

यह सूरकिरण तम दुःखहारि।
ससिकला किधौं उर सीतकारि॥
कल कीरति सी सुभ सहित नाम।
कै राज्यश्री यह तजी राम॥४०॥

कै नारायन उर सम लसंति।
सुभ अंकन ऊपर श्री बसंति॥
वर विद्या सी आनंददानि।
युत अष्टापद मनु शिवा मानि॥४१॥

जनु माया अच्छर सहित देखि।
कै पत्री निश्चयदानि लेखि॥
प्रिय प्रतीहारिनी सी निहारि।
श्री रामोजय उच्चारकारि॥४२॥

पिय पठई मानौ सखि सुजान।
जग भूषण कौ भूषण निधान॥
निजु आई हमकौं सीख देन।
यह किधौं हमारौ मरम लेन॥४३॥

(दो०) सुखदा सिखदा अर्थदा, यसदा रसदातारि।
रामचंद्र की मुद्रिका, किधौं परम गुरु नारि॥४४॥

बहुबरना सहज प्रिया, तम-गुनहरा प्रमान।
जग मारग-दरसावनी, सूरज किरन समान॥४५॥

श्री पुर में, वन मध्य हौं, तू मग करी अनीति।
कहि मुँदरी अब तियन की, को करिहैं परतीति॥४६॥

(पद्धटिका छंद)

कहि कुसल मुद्रिके! रामगात।
पुनि लक्ष्मण सहित समान तात॥
यह उत्तर देति न बुद्धिवंत।
केहि कारण धौं हनुमंत संत॥४७॥

हनुमान्—(दो०) तुम पूछत कहि मुद्रिके, मौन होति यहि नाम॥
कंकन की पदवी दई, तुम बिन या कहँ राम॥४८॥

राम-विरह-वर्णन

(दंडक)

दीरघ दरीन बसैं केसौदास केसरी ज्यौं,
केसरी कौं देखि वन करी ज्यौं कँपत हैं।
बासर की संपति उलूक ज्यौं न चितवत,
चकवा ज्यौं चंद चितै चौगुनो चपत हैं॥
केका सुनि व्याल ज्यौं, बिलात जात घनस्याम,
घनन की घोरनि जवासो ज्यौं जपत हैं।
भौंर ज्यौं भँवत वन, योगी ज्यौं जगत रैनि,
साकत ज्यौं राम नाम तेरोई जपत हैं॥४९॥

(दो०) दुख देखे सुख होहिगो सुक्ख न दुःख विहीन।
जैसे तपसी तप तपे होत परमपद लीन॥५०॥
बरषा वैभव देखिकै देखी सरद सकाम।
जैसे रन में काल भट भेंटि भेंटियत बाम॥५१॥
दुःख देखिकै देखिहौं तव मुख आनँद-कंद।
तपन ताप तपि द्यौस निसि जैसे सीतल चंद॥५२॥
अपनी दसा कहा कहौं दीप दसा सी देह।
जरत जाति बासर निसा केसव सहित सनेह॥५३॥
सुगति सुकेसि सुनैनि सुनि सुमुखि सुदंति सुस्रोनि।
दरसावैगो बेगिही तुमको सरसिजयोनि॥५४॥

(हरिगीत छंद)

कछु जननि दे परतीति जासों रामचंद्रहि आवई।
सुभ सीस की मनि दई, यह कहि, 'सुयस तव जग गावई॥
सब काल ह्वैहौ अमर अरु तुम समर जयपद पाइहौ।
सुत आजु तें रघुनाथ के तुम परम भक्त कहाइहौ' ॥५५॥
कर जोरि पग परि तोरि उपवन कोरि किंकर मारियो।
पुनि जंबुमाली मंत्रिसुत अरु पंच मंत्रि सँहारियो॥
रन मारि अच्छकुमार बहु विधि इंद्रजित सों युद्ध कै।
अति ब्रह्मशस्त्र प्रमान मानि सुवश भयो मन सुद्ध कै॥५६॥

हनुमान्-रावण-संवाद

(विजय छंद)

'रे कपि कौन तू अच्छ को घातक ?' 'दूत बली रघुनंदन जू को।'
'को रघुनंदन रे ?' 'त्रिसिरा-खरदूषन-दूषन भूषन भू को॥'
'सागर कैसे तर्‌यो ?' 'जैसे गोपद', काज कहा ?' 'सियचोरहि देखौं।'
'कैसे बँधायो ?' 'जो सुंदरि तेरी छुई दृग सोवत, पातक लेखौं'। ५७ ॥

(चामर छंद)

रावण--कोरि कोरि यातनानि फोरि फोरि मारिए।
काटि काटि फारि माँसु बाँटि बाँटि डारिए॥
खाल खैंचि खैंचि हाड़ भूँजि भूँजि खाहु रे।
पौरि टाँगि रुंड मुंड लै उड़ाइ जाहु रे॥५८॥
विभीषण--दूत मारिए न राजराज, छोड़ि दीजई।
मंत्रि मित्र पूँछि कै सो और दंड कीजई॥
एक रंक मारि क्यौं बड़ो कलंक लीजई।
बुंद सोखिगो कहा महा समुद्र छीजई॥५९॥
तूल तेल बोरि बोरि जोरि जोरि बाससी।
लै अपार रार ऊन दून सूत सौं कसी॥

पूँछ पौनपूत की सँवारि बारि दी जहीं।
अंग को घटाइ कै उड़ाइ जात भो तहीं ॥६०॥

(चंचरी छँद)

धाम धामनि आगि की बहु ज्वाल-माल बिराजहीं।
पौन के झकझोर ते झँझरी झरोखन भ्राजहीं ॥
बाजि बारन सारिका सुक मोर जोरन भाजहीं।
छुद्र ज्यों बिपदाहि आवत छोड़ि जात न लाजहीं ॥६१॥

लंका-दाह

(भुजंगप्रयात छंद)

जटी अग्निज्वाला अटा सेत हैं यौं।
सरत्काल के मेघ संध्या समै ज्यौं ॥
लगी ज्वाल धूमावली नील राजैं।
मनौ स्वर्ण की किंकिणी नाग साजैं ॥६२॥
कहूँ रैनिचारी गहे ज्योति गाढ़े।
मनौ ईस-रोषाग्नि मैं काम डाढ़े ॥
कहूँ कामिनी ज्वालमालानि भोरैं।
तजैं लाल सारी अलंकार तोरैं ॥६३॥
कहूँ भौन राते रचे धूम-छाहीं।
ससी सूर मानौं लसैं मेघ माहीं।
जरै सस्त्रसाला मिली गंधमाला।
मलै अद्रि मानौ लगी दाव-ज्वाला ॥६४॥
चली भागि चौहूँ दिसा राजरानी।
मिलीं ज्वाल-माला फिरै दुःखदानी ॥
मनो ईस-बानावली लाल लोलैं।
सबै दैत्यजायान के संग डोलैं ॥६५॥

(सवैया)

लंक लगाइ दई हनुमंत विमान बचे अति उच्चरुखी ह्वै।
पावक मैं उचटैं बहुधा मनि, रानी रटैं 'पानी' 'पानी' दुखी ह्वै॥
कंचन को पघिल्यो पुर पूर, पयोनिधि मैं पसरो सो सुखी ह्वै।
गंग हजारमुखी गुनि, केसौ, गिरा मिली मानौ अपार मुखी ह्वै।६६।

(दो०) हनुमत लाई लंक सब, बच्यो विभीषन धाम
ज्यौं अरुनोदय बेर मैं, पंकज पूरब याम॥६७॥

(संयुता छंद)

हनुमंत लंक लगाइकै। पुनि पूँछ सिंधु बुझाइ कै।
शुभ देख सीतहि पाँ परे। मनि पाय आनँद जी भरे॥६८॥
रघुनाथ पै जब ही गये। उठि अंक लावन को भये।
प्रभु मैं कहा करनी करी। सिर पाय की धरनी धरी॥६९॥

(दो०) चिंतामनि सी मनि दई, रघुपति कर हनुमंत।
सीताजू को मन रँग्यौ, जनु अनुराग अनंत॥७०॥

सीता-संदेश

(घनाक्षरी)

भौंरनी ज्यौं भ्रमति रहति बनबीथिकानि,
हंसिनी ज्यौं मृदुल मृनालिका चहति है।
हरिनी ज्यौं हेरति न केसरी के काननहिं,
केका सुनि ब्याली ज्यौं बिलानहीं चहति है॥
'पीउ' 'पीउ' रटत रहनि चित चातकी ज्यौं,
चंद चितै चकई ज्यौं चुप ह्वै रहति है।
सुनहु नृपति राम बिरह तिहारे ऐसी,
सूरति न सीताजू की मूरति गहति है॥७१॥

(दो०) "श्रीनृसिंह प्रह्लाद की, वेद जो गावत गाथ।
गये मास दिन आसु ही झूँठी ह्वैहै नाथ"॥७२॥

CENTRAL LIBRARY

(दंडक)

राम--साँचो एक नाम हरि लीन्हे सब दुःख हरि,
और नाम परिहरि नरहरि ठाये हौ।
बानर नहीं हौ तुम मेरे बान रोष सम,
बलीमुख सूर बली मुख निजु गाये हौ॥
साखामृग नाहीं, बुद्धि-बलन के साखामृग,
कैधौं वेद साखामृग, केसव को भाये हौ।
साधु हनुमंत बलवंत यसवंत तुम,
गये एक काज कों अनेक करि आये हौ॥७३॥

(तोमर छंद)

हनुमान्--गइ मुद्रिका लै पार। मनि मोहिं ल्याई वार॥
कह कर्‌यो मैं बल रंक। अतिमृतक जारी लंक॥७४॥

राम-प्रयान

तिथि विजयदसमी पाइ। उठि चले श्री रघुराइ॥
हरि यूथ यूथप संग। बिन पच्छ केते पतंग॥७५॥

(दंडक)

सुग्रीव--कहै केसौदास, तुम सुनौ राजा रामचंद्र,
रावरी जबहिं सैन उचकि चलति है।
पूरति है भूरि धूरि रोदसिहिं आसपास,
दिसि दिसि वरषा ज्यौं बलनि बलति है॥
पन्नग पतंग तरु गिरि गिरिराज गन,
गजराज मृगराज राजनि दलति है।
जहाँ तहाँ ऊपर पताल पय आइ जात,
पुरइनि के से पात पुहुमी हलति है॥७६॥
लक्ष्मण--भार के उतारिबे को अवतरे रामचंद्र,
किधौं केसौदास भूरि भरन प्रबल दल।

टूटत हैं तरुवर गिरे गन गिरिवर,
सूखे सब सरवर सरिता सकल जल ।।
उचकि चलत हरि दचकनि दचकत,
मंच ऐसे मचकत भूतल के थल थल।
लचकि लचकि जात सेस के असेस फन,
भागि गई भोगवती, अतल, वितल, तल ।।७७।।
(दो०) बल-सागर लछिमन सहित, कपि सागर रनधीर।
यस-सागर रघुनाथ जू, मेले सागर तीर ।।७८।।

समुद्र-वर्णन

(विजय छंद)

भूति विभूति पियूषहु की विष,
ईस सरीर कि पाप वियो है।
है किधौं केसव कस्यप को घर,
देव अदेवन के मन मोहै ।।
संत हियौ कि बसै हरि संतत,
सोभ अनंत कहै, कवि को है।
चंदन नीर तरंग तरंगित,
नागर कोउ कि सागर सोहै ।।७९।।

(गीतिका छंद)

जलजाल काल कराल माल तिमिंगलादिक सों बसै।
उर लोभ छोभ विमोह कोह सकाम ज्यौं खल कों लसै ।।
बहु संपदा युत जानिए अति पातकी सम लेखिए।
कोउ माँगनो अरु पाहुनो नहिं नीर पीवत देखिए ।।८०।।

(इति सुंदर कांड)

—केशवदास

———

हरिचरण-वंदना

राग तिलंग

मन रे परसि हरि के चरण।
सुभग सीतल कँवल-कोमल, त्रिबिध ज्वाला-हरण॥
जिण चरण प्रहलाद परसे, इंद्र-पदवी-धरण।
जिण चरण ध्रुव अटल कीने, राखि अपनी शरण॥
जिण चरण ब्रह्मांड भेंट्यो, नख सिखाँ सिरी धरण।
जिण चरण प्रभु परसि लीने, तरी गौतम-घरण॥
जिण चरण कालिनाग नाथ्यो, गोप-लीला-करण।
जिण चरण गोवरधन धारचो, इंद्र को ग्रब-हरण॥
दासि 'मीराँ' लाल गिरिधर, अगम तारण-तरण॥१॥

राज जोगिया

हेरी मैं तो दरद दिवाणी मेरो दरद न जाणै कोइ।
घायल की गति घायल जाणै की जिण लाई होइ।
जौहरि की गति जौहरि जाणै की जिन जौहर होइ।
सूली ऊपरि सेज हमारी सोवणा किस बिध होइ।
गगन मंडल पै सेज पिया की किस बिध मिलणा होइ।
दरद की मारी बन बन डोलूँ बैद मिल्या नहिं कोइ।
'मीराँ' की प्रभु पीर मिटैगी जब बैद साँवलिया होइ॥२॥

राग देस

दरस बिन दूखण लागे नैण।
जब के तुम बिछुरे प्रभु मोरे कबहुँ न पायो चैन।
सबद सुणत मेरी छतियाँ काँपै मीठे मीठे बैन।
बिरह कथा कासूँ कहूँ सजनी बह गई करवत ऐन।
कल न परत पल हरि मग जोवत भई छमासी रैण।
'मीराँ' के प्रभु कब रे मिलोग दुख मेटण सुख दैण॥३॥

राग आनंद भैरो

सखी मेरी नींद नसानी हो।
पिय को पंथ निहारत सिगरी रैण बिहानी हो।
सब सखियन मिलि सीख दई, मन एक न मानी हो।
बिनि देख्यां कल नाँहि पड़त जिय ऐसी ठानी हो।
अंग छीन ब्याकुल भई मुख पिय पिय बानी हो।
अन्तर बेदन बिरह की वह पीड़ न जानी हो।
ज्यूं चातक घन कूं रटै, मछरी जिमि पानी हो।
'मीराँ' ब्याकुल बिरहिणी सुध बुध बिसरानी हो॥४॥

पपैया प्यारे कब को बैर चिताय्यो।
मैं सूती छी अपने भवन में पिय पिय करत पुकारयो।
दाध्या ऊपर लूण लगायो हियरे करवत साय्यो।
उड़ि बैठयो वा बृच्छ की डाली बोल बोल कँठ साय्यो।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर हरि चरनाँ चित धाय्यो॥५॥

पपइया रे पिव की वाणी न बोल।
सुणि पावेली बिरहिणी रे, थाँरे डालेगी पाँख मरोड़।
चोंच कटाऊँ पपइया रे, ऊपरि कालर लूँण।
पिव मेरा मैं पीव की रे, तू पिव कहै सु कूँण।
थाँरा सबद सुहावणा रे, जो पिव मेला आज।
चोंच मढ़ाऊँ थाँरी सोवनी रे, तू मेरी सिरताज।
प्रीतम कूं पतियाँ लिखूं रे, कउवा तू ले जाय।
जाइ प्रीतम जी सूं यूं कहै रे, थाँरी बिरहिणि धान न खाय।
'मीराँ' दासी ब्याकुली रे पिव पिव करत बिहाय।
बेगि मिलो प्रभु अन्तरजामी तुम बिन रह्यो न जाय॥६॥

राग भैरव—तिताला

म्हारे घर आज्यो प्रीतम प्यारा तुम बिन सब जग खारा।
तन मन धन सब भेंट करूँ और भजन करूँ मैं थाँरा।

तुम गुणवंत बड़े गुणसागर मैं हूंजी औगुण हारा।
मैं निगुणी गुण एको नाहीं तुझ में जी गुण सारा।
'मीराँ' कहै प्रभु कबरि मिलोगे बिन दरसण दुखियारा ॥७॥

म्हाँ ने चाकर राखो जी गिरिधारीलाला, म्हाँने चाकर राखो जी।
चाकर रहसूँ बाग लगासूँ, नित उठ दरसण पासूँ।
बृंदावन की कुंजगलिन में तेरी लीला गासूँ।
चाकरी में दरसण पाऊँ, सुमिरण पाऊँ खरची।
भाव भगति जागीरी पाऊँ, तीनों बातों सरसी।
मोर मुकुट पीताम्बर सोहै, गल बैजन्ती माला।
बृंदावन में धेनु चरावै, मोहन मुरली वाला।
हरे हरे नित बाग लगाऊँ, बिच-बिच राखूँ क्यारी।
साँवरिया के दरसण पाऊँ, पहर कुसुंभी सारी।
जोगी आया जोग करण कूँ, तप करणे संन्यासी।
हरी भजन कूँ साधू आया, बृंदाबन को बासी।
'मीराँ' के प्रभु गहिर गँभीरा, सदा रहो जी धीरा।
आधी रात प्रभु दरसण दैहैं, प्रेम नदी के तीरा ॥८॥

राग खम्माच

मीरा मगन भई हरि के गुण गाय।
साँप पेटारा राणा भेज्या, मीरा हाथ दियो जाय।
न्हाय धोय जब देखन लागी सालिग्राम गई पाय ॥
जहर का प्याला राणा भेज्या इम्रत दीन्ह बनाय।
न्हाय धोय जब पीवन लागी हो गई अमर अँचाय ॥
सूल सेज राणा नें भेजी दीज्यो मीरा सुलाय।
साँझ भई मीराँ सोवण लागी मानों फूल बिछाय ॥
'मीराँ' के प्रभु सदा सहाई राखे बिघन हटाय।
भजन भाव में मस्त डोलती गिरिधर पै बलि जाय ॥९॥

राणा जी मैं सॉवरे रँगराती।
जिनके पिया परदेस बसत हैं वे लिख लिख भेजें पाती।
मेरा पिया मेरे हृदय बसत है यह सुख कहो न जाती।
झूठा सुहाग जगत का री सजनी, होय होय मिट जासी।
मैं तो एक अविनासी वरूँगी, जाहि काल नहि खासी।
औरन तो प्याला पी पी माती, मैं बिन पिये ही माती।
ये प्याला है प्रेम हरी का, मैं छकी रहूँ दिन राती।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर, खोल मिली हरि से माती ॥१०॥

राग पीलू

पग घुँघरू बाँधि मीरा नाची रे, पग घुँघरू।
लोग कहें मीरा हो गई बावरि, सास कहे कुलनासी रे।
जहर का प्याला राणाजी भेजा पीवत मीराँ हाँसी रे।
मैं तो अपने नारायण की हो गई आपहि दासी रे।
'मीराँ' के प्रभु गिरिधर नागर बेग मिला अविनासी रे ॥११॥

तू म्हारो जनम मरण को साथी,
थाँ नें नहि बिसरूँ दिन राती।
तुम देख्याँ बिन कल न पड़त है, जानत मेरी छाती।
ऊँची चढ़-चढ़ पंथ निहारूँ, रोय-रोय अँखियाँ राती।
यो संसार सकल जग झूठा, झूठा कुलरा नाती।
दोउ कर जोड़याँ अरज करतहूँ, सुण लीज्यो मेरी बाती।
यो मन मेरो बड़ा कुचाली, ज्यूँ मदमातो हाथी।
सतगुर हस्त धरयो सिर ऊपर, आँकुस दे समझाती।
पल पल तेरा रूप निहारूँ, निरख निरख सुख पाती।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, हरि चरणां चित राती।

—मीराँबाई

बिहारी के दोहे

मेरी भवबाधा हरौ राधा नागरि सोय।
जा तन की झांईं परे स्याम हरित दुति होय ।।१।।

सीस मुकुट कटि काछनी कर मुरली उर माल।
यहि बानिक मो मन बसौ सदा बिहारीलाल ।।२।।

मोहनि मूरति स्याम की अति अद्भुत गति जोय।
बसति सुचित अन्तर तऊ प्रतिबिंबित जग होय ।।३।।

तजि तीरथ हरि-राधिका तन-दुति करि अनुराग।
जिहि ब्रज केलि निकुंज मग पग पग होत प्रयाग ।।४।।

सघन कुंज छाया सुखद सीतल मंद समीर।
मन ह्वै जात अजौं वहै वा जमुना के तीर ।।५।।

गिरि ते ऊंचे रसिक मन बूड़े जहां हजार।
वहै सदा पसु नरन कहं प्रेम पयोधि पगार ।।६।।

कबौं न ओछे नरन सों सरत बड़ेन को काम।
मढ़ो दमामो जात कहुं कढ़ि चूहे के चाम ।।७।।

बसैं बुराई जासु तन ताही को सनमान।
भलो भलो कहि छोड़िये खोटे ग्रह जप दान ।।८।।

कहैं इहै सब श्रुति सुमृति इहै सयाने लोग।
तीन दबावत निसक ही पातक, राजा, रोग ।।९।।

बड़े न हूजै गुनन बिनु बिरद बड़ाई पाय।
कहत धतूरे सों कनक गहनो गढ़ो न जाय ।।१०।।

गुनी गुनी सब कोउ कहै निगुनी गुनी न होत।
सुन्यो कहूं तरु अर्क ते अर्क समान उदोत ।।११।।

संगति सुमति न पावहीं परे कुमति के धंध।
राखौ मेलि कपूर में हींग न होत सुगंध ।।१२।।

सबै हंसत करतारि दै नागरता के नांव।
गयो गरब गुन को सबै बसे गंवारे गांव ॥१३॥
नर की अरु नलनीर की गति एकै करि जोइ।
जेतो नीचो ह्वै चलै तेतो ऊँचो होइ ॥१४॥
जो चाही चटक न घटै मैलो होय न मित्त।
रज राजस न छुवाइये नेह चीकने चित्त ॥१५॥
अति अगाध अति ओथरे नदी कूप सरबाय।
सो ताको सागर जहां जाकी प्यास बुझाय ॥१६॥
कनक कनक तें सौ गुनी मादकता अधिकाय।
वा खाये बौरात है या पाये बौराय ॥१७॥
जिन दिन देखे वे सुमन गई सु बीति बहार।
अब अलि रही गुलाब की अपत कंटीली डार ॥१८॥
इहि आसा अटक्यो रहै अलि गुलाब के मूल।
ह्वैहैं बहुरि बसंत ऋतु इन डारन वे फूल ॥१९॥
अरे हंस या नगर में, जैयो आप बिचारि।
कागनि सों जिन प्रीति करि कोकिल दई बिडारि ॥२०॥
को कहि सकै बड़ेन सों लखे बड़ी हू भूल।
दीने दई गुलाब कों इन डारन वे फूल ॥२१॥
कर लै सूंघि सराहि कै रहै सबै गहि मौन।
गंधी गंध गुलाब को गंवई गाहक कौन ॥२२॥
को छूटचो यहि जाल परि कत कुरंग अकुलात।
ज्यों ज्यों सुरझि भज्यो चहत त्यों त्यों उरझत जात ॥२३॥
पटु पांखै, भखु कांकरै, सदा परेई संग।
सुखी परेवा पुहुमि में, एकै तुही बिहंग ॥२४॥
स्वारथ सुकृत न श्रम वृथा देखु विहंग विचारि।
बाज पराये पानि परि तू पंछीहि न मारि ॥२५॥

CENTRAL LIBRARY

दिन दस आदर पायकै, करिलै आपु बखान।
जौलौं काग सराधपख तौलौं तो सनमान ॥२६॥
मरत प्यास पिंजरा परो सुवा दिननके फेर।
आदर दै दै बोलियँत बायस बलिकी बेर ॥२७॥

—बिहारीलाल

रसखान

मानुस हौं, तो वही रसखानि,
बसौं ब्रज-गोकुल गांव के ग्वारन।
जो पसु हौं, तौ कहा बसु मेरो,
चरौं नित नन्द की धेनु मंझारन॥
पाहन हौं, तौ वही गिरि कौ,
जो धरचो कर छत्र पुरंदर-धारन।
जो खग हौं, तौ बसेरो करौं,
मिलि कालिंदीकूलकदम्ब की डारन॥१॥
या लकुटी अरु कामरिया पर,
राज तिहूं पुर को तजि डारौं।
आठहुं सिद्धि नवोनिधि को सुख,
नन्द की गाइ चराइ बिसारौं॥
इन आंखिन सों रसखानि कबौं
ब्रज के बन-बाग-तड़ाग निहारौं।
कोटिक हौं कलधौत के धाम,
करील की कुंजन ऊपर वारौं॥२॥

मोर-पखा सिर ऊपर राखिहौं,
गुंज की माल गरे पहिरौंगी।
ओढ़ि पितम्बर, लै लकुटी बन,
गोधन ग्वारनि संग फिरौंगी॥
भावतो वोहि मेरो रसखानि, सो
तेरे कहे सब स्वांग भरौंगी।
या मुरली मुरलीधर की
अधरान-धरी अधरा न धरौंगी॥३॥

गावैं गुनी गनिका गंधर्व, औ
सारद सेस सबै गुन गावैं।
नाम अनंत गनंत गनेस ज्यौं,
ब्रह्मा त्रिलोचन पार न पावैं॥
जोगी जती तपसी अरु सिद्ध,
निरन्तर जाहि समाधि लगावैं।
ताहि अहीर की छोहरियाँ,
छछिया भरि छाछ पै नाच नचावैं॥४॥

सेस महेस गनेस दिनेस,
सुरेसहुं जाहि निरन्तर गावैं।
जाहि अनादि अनंत अखंड,
अछेद अभेद सुबेद बतावैं॥
नारद-से सुक ब्यास रटैं,
पचि हारे तऊ पुनि पार न पावैं।
ताहि अहीर की छोहरियां,
छछिया भरि छाछ पै नाच नचावैं॥५॥

कौन ठगौरी भरी हरि आजु,
बजाई है बांसुरिया रंग भीनी।
तान सुनी जिनहीं तिनहीं तब ही,
कुल लाज बिदा करि दीनी॥

घूमैं घरी-घरी नन्द के द्वार,
नवीनी कहा कहूं बाल नवीनी।
या ब्रजमंडल में रसखानि,
सु कौन भटू, जो लटू नहिं कीनी ॥६॥

धूरि-भरे अति सोभित स्यामजू,
तैसी बनी सिर सुन्दर चोटी।
खेलत-खात फिरैं अँगना, पग
पैंजनीं बाजतीं, पीरी कछोटी॥
वा छबि को रसखानि बिलोकत,
वारत काम-कलानिधि कोटी।
काग के भाग कहा कहिए, हरि–
हाथ सों लै गयो माखन-रोटी ॥७॥

सोहत हैं चंदवा सिर मौर के,
जैसियै सुंदर पाग कसी है।
तैसियै गोरज भाल बिराजति,
जैसी हियें बनमाल लसी है॥
रसखानि बिलोकति बौरी भई,
दृग मूंदिकै ग्वारि पुकारि हंसी है।
खोलि री घूंघट, खोलौं कहा,
वह मूरति नैननि मांझ बसी है ॥८॥

ब्रह्म मैं ढूंढ़्यौं पुरानन गानन,
बेद-रिचा सुनि चौगुने चायन।
देख्यौं सुन्यौं कबहूं न कितू,
वह कैसे सुरूप औ कैसे सुभायन॥
टेरत-हेरत हारि परचौ रसखानि,
बतायो न लोग-लुगायन।
देख्यौ, दुरचौ वह कुंज-कुटीर में,
बैठो पलोटतु राधिका-पायन ॥९॥

दानी भये नये मांगत दान,
सुनै जु पै कंस तौ बांधिकै जैहौ।
रोकत हौ बन मैं रसखानि,
पसारत हाथ, घनौ दुख पैहौ॥
टूटे छरा बछरा अरु गोधन,
जो धन है सु सबै धरि दैहौ।
जहै अभूषन काहू सखी कौ,
तो मोल छला के, लला न बिकैहौ॥१०॥
द्रौपदी औ गनिका गज गीध,
अजामिल सों कियो सो न निहारौ।
गौतम-गेहिनी कैसे तरी,
प्रहलाद कौ कैसे हरयो दुख भारौ॥
काहे कों सोच करै रसखानि,
कहा करिहै रविनंद बिचारौ।
कौन की संक परी है जु माखन—
चाखनहारो है राखनहारो॥११॥

—रसखान

विरह-निवेदन

(१)

पर-काजहि देह को धारि फिरौ परजन्य जथारथ ह्वै दरसौ।
निधि-नीर सुधा की समान करौ सब ही बिधि सज्जनता सरसौ।
घनआनंद जीवन दायक हौ कछु मेरियौ पीर हिएँ परसौ।
कब हूँ वा बिसासी सुजान के आँगन मो अँसुवानिहि लै बरसौ॥

(२)

घनआनंद जीवन मूल सुजान की कौंधनि हूँ न कहूँ दरसैं।
सु न जानिए धौं कित छाय रहे दृग चातिक प्रान तपे तरसैं।
बिन पावस तो इन्हें ध्यावस हो न सु क्यों करि ये अब सो परसैं।
बदरा बरसैं रितु में घिरि कै नितही अँखियाँ उघरी बरसैं।

(३)

सावन आवन हेरि सखी मन भावन आवन चोप बिसेषी।
छाए कहूँ घनआनंद जान सम्हारि की ठौर लै भूल न लेषी।
बूँदें लगैं सब अंग दगैं उलटी गति आपने पापनि पेषी।
पौन सों जागत आगि सुनी ही पै पानी सों लागत आँखिन देषी।

(४)

साधनि ही मरियै भरियै, अपराधनि बाधनि के गुन छावत,
देखैं कहा ? सपनो हूँ न देखत, नैन यों रैनि दिना झर लावत,
जौ कहूँ जान लखैं घनआनंद तौ तन नेकु न औसर पावत,
कौन वियोग-भरे असुँवा ? जु सँजोग में आगेई देखन धावत।

(५)

बिरहा रवि सों घट ब्योम तच्यो बिजुरी सी षिवैं इकली छतियाँ।
हिय सागर तें हम मेघ भरे उघरे बरसैं दिन औ रतियाँ।
घनआनंद जान अनोखी दसा न लखौं दई कैसे लिखौं पतियाँ।
नित सावन डीठी सु बैठक में टपकैं बरुनी तिहि ओलतियाँ॥

(६)

किंसुक पुंज से फूलि रहे सुलगी उर दौ जु वियोग तिहारें।
मानो फिरैं न घिरैं अवलानि पैं जान मनोज यों डारत मारें।
ह्वै अभिलाषनि पातनि पात कढ़ें हिय सूल उसासनि डारें।
ह्वै पतझार बसंत दुहूँ घनआनंद एकहि बार हमारें॥

CENTRAL LIBRARY

(७)

हम सों हित कै कितको हित हीं चित बीच वियोगहिं बोय चले।
सु अखैवट बीज लों फैलि पर्‌यो बनमाली कहाँ धौं समोय चले।
घनआनंद छाए बितान तन्यो हमें ताप के आतप खोय चले।
कबहूँ तिहि मूल तौ बैठिए आय सुजान ज्यों हाय कै रोय चले॥

(८)

जब तें तुम आवन आस दई तब तें तरफौं कब आय हौ जू।
मन आतुरता मन ही मैं लखौ मन भावन जान सुभाय हौ जू।
बिधि के दिन लौं छिन बाढ़ि परे यह जानि वियोग बिताय हौ जू।
सरसौ घनआनंद वा रस कों जु रसा रस सो बरसाय हौ जू॥

(९)

अभिलाषनि लाषनि भाँति भरीं बरुनीन रुमांच ह्वै काँपति हैं।
घनआनंद जान सुधाधर मूरति चाहनि अंक मैं चाँपति हैं।
ढिग लाय रहीं पल पाँवड़ कै सु चकोर की चौंपहि झाँपति हैं।
जब तें तुम आवनि औधि बदी तब तें अँखियाँ मग माँपति हैं॥

(१०)

मग हेरत दीठि हिराय गई जब तें तुम आवनि औधि बदी।
बरसौ कितहूँ घनआनंद प्यारे पै, बाढ़ति है इत सोच नदी॥
हियरा अति औटि उदेग की आँचनि च्वावत आँसुन मैन मदी।
कब आय हौ औसर जान सुजान बहीर लों बैस तौ जाति लदी॥

(११)

लाखनि भांति भरे अभिलाषनि कै पल पाँवड़े पंथ निहारैं।
लाड़िली आवनि लालसा लागि न लागत हैं मन मैं पन धारैं।
यों रस भींजे रहैं घनआनंद रीझे सुजान सुरूप तिहारैं।
चायनि बावरे नैन कबै अंसुवानि सों रावरे पाय पखारैं॥

(१२)

छबि को सदन मोद मंडित बदन चंद
तृषित चषनि लाल कब धौं दिखाय हौ।
चटकीलौ भेष करें मटकीली भाँति सौही
मुरली अधर धरें लटकत आय हौ।
लोचन दुराय कछू मृदु मुसिक्याय नेह
भीनी बतियानि लड़काय बतराय हौ।
बिरह जरत जिय जानि आनि प्रान प्यारे
कृपानिधि आनंद को घन बरसाय हौ॥

(१३)

मूरति सिंगार की उजारी छबि भाँति
दीठि लालसा के लोयननि लै लै आँजिहौं।
रति रसना सवाद पाँवड़े पुनीतकारी
पाय चूमि चूमि कै कपोलनि सो माँजिहौं।
जान प्यारे प्रान अंग अंग रुचि रंगनि में
बोरि सब अंगनि अनंग दुख भाजिहौं।
कब घनआनंद ढरौंहीं बानि देखै सुधा
हेत मन घट दरकनि सु बिराजिहौं॥

(१४)

रस रंग भरी मृदु बोलनि को कब काननि पान कराय हौ जू।
गति हंस प्रसंसित सों कबधौं सुख लै अंखियानि में आय हौ जू।
अभिलाषनि पूरित ह्वै उफन्यो मन तें मन मोहन पाय हौ जू।
चित चातक के घनआनंद हौ रटना पर रोझनि छाय हौ जू।

(१५)

प्रीतम सुजान मेरे हित के निधान कहौ
कैसें रहैं प्रान, जो अनखि अरसाय हौ।
तुम तौ उदार दीन-हीन आनि पर्‌यौ द्वार
सुनियै पुकार याहि कौ लौं तरसाय हौ।
चातक है रावरो अनोखो मोहि आवरो
सुजान रूप बावरो बदन दरसाय हौ।
बिरह नसाय, दया हित मैं बसाय,
आय हाय कब आनंद को घन बरसाय हौ॥

(१६)

रूप उजियारे जान प्राननि के प्यारे कब
करौगे जुन्हैया दैया बिरह महा तमैं।
सुखद सुधा सी हँसि हेरनि पिवाइ पिय
जियहि जिवाइ मारिहौ उदेग सेज मैं।
सुंदर सुदेस आखैं बहुर्‌यौ बसाय आय
बसिहौ छबीले जैसें हुलसि हिएं रमैं।
ह्वैहैं सोऊ घरी भाग उघरी अनंदघन
सुरस बरसि लाल देखिहौ हरी हमैं॥

(१७)

ह्वैहै कौन घरी भाग भरी पुन्य पुंज फरी
खरी अभिलाषनी सुजान पिय भेटि हौं।
अमी ऐन आनन कौ पान प्यासे नैननि सौं
चैननि ही करि कै वियोग ताप मेटि हौं।
गाढ़े भुज दंडनि के बीच उर मंडन कों
धारि घनआनंद यों सुखनि समेटि हौं।
मथत मनोज सदा मो मन पै हौं हूं कब
प्रान पति पास पाय तासु मद फेटि हौं॥

(१८)

घूमत सीस लगै कब पाइनि भाइनि चित्त में चाह घनेरी।
आँखिन प्रान रहे करि थान सुजान सुमूरति माँगत नेरी।
रोम हि रोम परी घनआनंद काम की रोर न जाति निबेरी।
भूलनि जीतति आपुनपौ बलि भूलैं नहीं सुधि लेहु सबेरी॥

(१९)

किहि ठान ठनी हौं सुजान मनौ गति जानि सकै सु अजान कर्‌यौ।
इहि सोच समाय उदेगन माय बिछोह तरंगनि पूरि भर्‌यौ।
सु सुनौ मन मोहन ताकी दसा सुधि साँचनि आँचनि बीच रर्‌यौ।
तुम तौ निहकाम सकाम हमैं घनआनंद काम सों काम रर्‌यौ॥

(२०)

जान सुखारे रहौ रहि आए हौ होत रही है सदा चित चीती।
हैं हम ही धुर की दुखहाई बिरंच बिचारि कै जात रची ती।
प्राण पपीहन के घन हौ मन दै घनआनंद कीजै अनीती।
जानौ कहा अनुमानौ हियें हित की गति कौ सुख सो नित बीती।

(२१)

चलि आई सदा रस रीति यहै किधौं मो निरमोही को मोह नयो।
घनआनंद प्रान हरै हँसि जान न जानि परै उघरो उनयो॥
चित चाह निवाह की बात रहौ हित कै नित ही दुष दाह दयो।
उर आस बिसास न त्रास तजै बसि एक ही बास बिदेस भयो।

(२२)

सब ठौर मिले पर दुरि रहौ भरि पूरि रहै जिहि रंग झिलौ।
इहि लायक हौ बहुनायक हौ सुषदायक हौ पुनि पाय खिलौ।
घनआनंद मीत सुजान सुनौ कहूँ ऊषिल से कहू हेत हिलौ।
हम और कछू नहि चाहति हैं छिनकौ किन मानस रूप लिलौ।

(२३)

अति सूधो सनेह को मारग है जहाँ नैकु सयानप बाँक नहीं।
तहाँ साँचे चलैं तजि आपन-पौ झिझिकें कपटी जे निसाँक नहीं।
घनआनंद प्यारे सुजान सुनो यहाँ एक तें दूसरो आँक नहीं।
तुम कौन धौं पाटी पढ़े हो लला मन लेहु पै देहु छटांक नहीं।

—घनआनंद

शिवराज-भूषण

कवित्त मनहरण

तेरो तेज सरजा समत्थ ! दिनकर सोहै,
दिनकर सोहै तेरे तेज के निकर सों।
भौंसिलाभुआल ! तेरो जस हिमकर सोहै,
हिमकर सोहै तेरे जस के अकर सों।
भूषण भनत तेरो हियो रतनाकर सो,
रतनाकर है तेरो हिय सुख कर सों।
साहि के सपूत सिव साहि दानि तेरो कर,
सुरतरु सोहै, सुरतरु तेरो कर सों॥ १॥

सिंह थरि जानें बिन जावली-जंगल-भठी,
हठी गज एदिल पठाय करि भटक्यो।
भूषन भनत, देखि भभरि भगाने सब,
हिम्मति हिये में धरि काहुवै न हटक्यो।

साहि के सिवाजी गाजी सरजा समत्थ महा,
मदगल अफजलै पंजाबल पटक्यो।
ता बिगिर ह्वै करि निकाम निज धाम कह,
आकुत महाउत सुआँकुस लै सटक्यो ॥ २ ॥

कवि कहैं करन, करनजीत कमनैत,
अरिन के उर माहिं कीन्ह्यो इमि छेव है।
कहत धरेस सब धराधर सेस ऐसो
और धराधरन को मेट्यो अहमेव है।
भूषन भनत महाराज सिवराज तेरो,
राज काज देखि कोई पावत न भेव है।
कहरी यदिल, मौज लहरी कुतुब कहै,
बहरी निजाम के जितैया कहै देव हैं ॥ ३ ॥

कवित्त मनहरण

लूटचो खानदौरा जोरावर सफजंग अरु,
लूटचो कारतलबखाँ मनहुं अमाल है।
भूषण भनत लूटचो पूना में सइस्तखान,
गढ़न में लूटचौ त्यों गढ़ोइन को जाल है।
हेरि हेरि कूटि सलहेरि बीच सरदार,
घेरि घेरि लूटचो सब कटक कराल है।
मानो हय हाथी उमराव करि साथी,
अवरंग डरि सिवाजी पै भेजत रिसाल है ॥ ४ ॥

अटल रहे हैं दिगअंतन के भूप धरि,
रैयति को रूप निज देस पेस करि कै।
राना रह्यो अटल बहाना करि चाकरी को,
बाना तजि, भूपन भनत, गुन भरि कै।

CENTRAL LIBRARY

हाड़ा, रायठौर, कछवाहे, गौर और रहे,
अटल चकत्ता को चमाऊ धरि डरि कै।
अटल सिवाजी रह्यौ दिल्ली को निदरि धीर,
धरि, ऐंड़ धरि, तेग धरि, गढ़ धरि कै॥ ५॥

मदजल धरन द्विरद बल राजैत है,
बहुजल-धरन जलद छवि साजे है।
भूमि के धरन फन-पति अति लसत है,
तेज ताप धरन ग्रीषम रवि छाजै है।
खरग धरन सोहे भट भारे रन ही में
भूषन लसत गुन-धरन समाजैं हैं।
दिल्ली के दलन देश दच्छिन के थंभन ही,
ऐंड़ के धरन सिव सरजा बिराजै है॥ ६॥

छूटचो है हुलास आम खास एक संग छूटचौ,
हरम सरम एक, संग बिनु ढंग ही।
नैनन तें नीर धीर छूटचौ एक संग छूटचौ,
सुख रुचि मुख रुचि त्योंही बिन रंग ही।
भूषन बखानैं, सिवराज, मरदाने तेरी,
धाक बिललाने, न गहत बल अंग ही।
दक्खिन के सूबा पाय दिली के अमीर तजैं,
उत्तर की आस जीव आस एक संग ही॥ ७॥

उत्तर पहार बिधनौल खण्डहर झार,
खण्डहु प्रचार चारु केली है बिरद की।
गौर गुजरात अरु पूरब पछाँह ठौर,
जंतु जंगलीन की बसति मार रद की।

भूषन जो करत न जाने बिनु घोर सोर,
भूलि गयो अपनी उँचाई लखे कद की।
खोइयो प्रबल मदगल गजराज एक,
सरजा सों बैर कै बड़ाई निज मद की॥ ८॥

बचैगा न समुहाने, बहलोल खाँ अयाने,
भूषण बखाने, दिल आन, मेरा बरजा।
तुझ तें सवाई तेरा भाइ सलहेरि पास,
कैद किया, साथ का न कोई वीर गरजा।
साहिन के साहि उसी औरंग के लीन्हे गढ़,
जिसका तू चाकर और जिसकी है परजा।
साहि का ललन दिली दल का दलन,
अफजल का मलन सिवराज आया सरजा॥ ९॥

मालती सवैया

श्री सरजा सिव तो जस सेत सों होत हैं बैरिन के मुँह कारे।
भूषन तेरे अरुन्न प्रताप सफेद लखे कुनबा नृप सारे।
साहि तनै तव कोप कृसानु से वैरि गरे सब पानिपवारे।
एक अचम्भव होत बड़ो तिन ओंठ गहे अरि जात न जारे॥ १०॥

कवित्त मनहरण

महाराज सिवराज चढ़त तुरंग पर,
ग्रीवा जात नै करि गनीम अतिबल की।
भूषन चलत सरजा की सैन भूमि पर,
छाती दरकत है खरी अखिल खल की।
किये दौरि घाव उमरावन अमीरन पै,
गई कट नाक सिगरेई दिली-दल की।
सूरत जराई कियो दाह पातसाह उर,
स्याही जाय सब पातसाही मुख झलकी॥ ११॥

CENTRAL LIBRARY

सहज सलील सील जलद से नील डील,
पब्बय से पील देत नाहिं अकुलात है।
भूषन भनत, महाराज सिवराज देत,
कंचन को ढेरु जो सुमेरु सो लखात है।
सरजा सवाई कासों करि कविताई तब,
हाथ की बड़ाई कौ बखान करि जात है।
जाको जस-टंक सातो दीप नव खण्ड महि,
मंडल की कहा ब्रहमंड न समात है॥ १२॥

बिना चतुरंग संग बानरन लै कै बाँधि,
बारिध को लंक रघुनन्दन जराई है।
पारथ अकेले-द्रोन भीषम से लाख भट,
जीति लीन्ही नगरी बिराट में बड़ाई है।
भूषन भनत, ह्वै गुसलखाने मैं खुमान,
अवरंग साहिबी हथ्याय हरि लाई है।
तौ कहा अचम्भो महराज सिवराज सदा,
बीरन के हिम्मतै हथ्यार होत आई है॥ १३॥

साहि तनै सिवराज भूषन सुजस तव,
बिगरि कलंक चंद उर आनियतु है।
पंचानन एक ही बदन गनि तोहि,
गजानन गज-बदन बिना बखानियतु है॥
एक सीस ही सहससीस कला करिबे कों,
दुहूँ दृग सों सहसदृग मानियतु है।
दुहूं कर सों सहसकर मानियतु तोहि,
दुहूँ बाहु सों सहसबाहु जानियतु है॥ १४॥

इन्द्र जिमि जंभ पर बाड़व सुअंभ पर,
रावन सदंभ पर रघुकुल-राज है।
पौन वारिबाह पर संभु रतिनाह पर,
ज्यों सहस्रबाहु पर राम द्विजराज है॥
दावा द्रुम-दंड पर चीता मृग-झुंड पर,
भूषन वितुंड पर जैसे मृगराज है।
तेज तम-अंस पर कान्ह जिमि कंस पर,
त्यों म्लेच्छ बंस पर सेर सिवराज है॥ १५॥

—भूषण

गङ्गा-लहरी

बई ती बिरंचि भई बामन-पगन पर,
फैली फैली फिरी ईस-सीस पै सुगथ की।
आइ कै जहान जह्नु-जंघा लपटाई फेरि,
दीनन के हेत दौरि कीन्हीं तीनि पथ की॥
कहै 'पदमाकर' सु महिमा कहाँ लौं कहौं,
गङ्गा नाम पायो सोही सबके अरथ की।
चारयो फल फली फूली गहगही बहबही,
लहलही कीरति-लता है भगीरथ की॥१

जैसे तैं न मोसों कहूँ नेकहू डरात हुतो,
तैसो अब तोसों हौं हूँ नेक हूँ न डरिहौं।
कहै 'पदमाकर' प्रचण्ड जो परैगो तौ,
उमंगि करि तोसों भुजदण्ड ठोंकि लरिहौं॥

चलो चलु चलो चलु, बिचलु न बीच ही तें,
कीच-बीच नीच तो कुटुम्ब को कचरिहौं।
ए रे दगादार मेरे पातक अपार, तोहि
गङ्गा की कछार में पछारि छार करिहौं ॥२

जमपुर द्वारे लगे तिन में केवारे, कोऊ
हैं न रखवारे ऐसे बन के उजारे हैं।
कहै 'पदमाकर' तिहारे प्रन धारे तेउ,
करि अघ भारे सुरलोक को सिधारे हैं॥
सुजन सुखारे करे पुन्य उजियारे अति,
पतित-कतारे भवसिन्धु तें उतारे हैं।
काहू ने न तारे तिन्हें गङ्गा तुम तारे, और
जेते तुम तारे तेते नभ में न तारे हैं ॥३

बिधि के कमण्डल की सिद्धि है प्रसिद्धि यही,
हरि-पद-पंकज प्रताप की लहर है।
कहै 'पदमाकर' गिरीस-सीस-मण्डल के,
मुंडन की माल ततकाल अघहर है॥
भूपति भगीरथ के रथ की सुपुन्य-पथ,
जह्नु-जप-जोग-फल-फैल की फहर है।
छेम की छहर गङ्गा रावरी लहर,
कलिकाल को कहर, जम जाल को जहर है ॥४

सबन के बीच मीच-समै महा नीच-मुख,
गङ्गा मैया तेरे आजु रेनु-कण ह्वै गये।
कहै 'पदमाकर' दसा यों सुनौ ताकि, वाकी
छबि की छटान सों त्यों छित-छोर छ्वै गये॥
दूत दबकाने चित्रगुप्त चुपकाने औ,
जकाने जमजाल पाप-पुंज लुंज त्वै गये।
चारि मुख चारि भुज चाहि-चाहि रहे ताहि,
पंचन के देखत ही पञ्च मुख ह्वै गये ॥५

रेनुका की रासन में कीच-कुस-कासन में,
निकट निवासन में आसन लदाऊ के।
कहै 'पदमाकर' तहाँई मञ्जु सूरन में,
धौरी-धौरी-धूरन में पूरन प्रभाऊ के॥
वारन में पारन में देखहु दरारन में,
नाचति है मुकुति अधीन सब काऊ के।
कूल औ कछारन में गंगाजल-धारन में,
मँझरा मँझारन में झारन में झाऊ के॥६
कैधौं तिहूँ लोक की सिगार की बिसाल माल,
कैधौं जगी जग में जमाति तीरथन की!
कहै 'पदमाकर' बिराजै सुरसिन्धु-धार,
कैधौं दूधधार कामधेनुन के थन की!
भूपति भगीरथ के जस की जलूस कैधौं,
प्रगटी तपस्या कैधौं पूरी जह्नु-जन की!
कैधौं कछू राखै राकापति सों इलाका भारी,
भूमि की सलाका कै पताका-पुन्य-गन की! ७
परो एक पतित पराउ तीर गंगाजू के,
कुटिल कृतघ्नी कोढ़ी कुण्ठित कुढंगी अन्ध।
कहै 'पदमाकर' कहौं मैं कौन वाकी दसा,
कीट परि गये तन आवै महा दुरगन्ध॥
पाप हाल छूटिगे सु लूटिगे विपत्ति जाल,
टूटिगे तड़ाक दे सुनाम लेत भव बन्ध।
गं कहे गणेस-बेस दौरि गही बाँह, अरु
गा के कहे गरुड़ चढ़ाइ लीन्हों निज कंध॥८
लाइ भूमि लोक तें जसूस जबरई जाइ,
जाहिर खबर करी पापिन के मित्र की।
कहै 'पदमाकर' बिलोकि जम कही, कै
विचारौ तौ करम-गति ऐसे अपवित्र की॥

जौं लौं लगे कागद विचारन कछुक तौ लौं,
तौंके कान परी धुनि गंगा के चरित्र की।
वाके सीस ही तें ऐसी गंगधार बही, जामें
बही-बही फिरी बही चित्र औ गुपित्र की ॥९
नीर के निकट रेनु-रंजित लसै यों तट,
एक पट चादर की चाँदनी बिछाई सी।
कहै 'पदमाकर' त्यों करत कलौंल लोक,
आवरत पूरी रासमण्डल की पाई सी ॥
बिसद बिहंगन की बानी राग राचती सी,
नाचती तरङ्ग ऐन आनन्द बधाई सी।
अघ की अँधेरी कहूँ रहन न पाई, फिरै
धाई धाई गंगाधार सरद-जुन्हाई-सी ॥१०

—पद्माकर

प्रेम-फुलवारी की भूमि

राग बिहाग

श्री राधे मोहि अपनो कब करिहौ।
जुगल-रूप-रस-अमित-माधुरी कब इन नैननि भरिहौ ॥
कब या दीन हीन निज जन पै ब्रज को बास बितरिहौ।
'हरीचंद' कब भव बूड़त तें भुज धरि धाइ उबरिहौ ॥ १ ॥

अहो हरि बस अब बहुत भई।
अपनी दिसि बिलोकि करुना-निधि कीजै नाहि नई ॥
जौ हमरे दोसन कों देखौ तौ न निबाह हमारौ।
करिकै सुरत अजामिल-गज की हमरे करम बिसारौ ॥

अब नहिं सही जात कोऊ बिधि धीर सकत नहिं धारी।
'हरीचन्द' को बेगि धाइकै भुज भरि लेहु उबारी॥ २॥

पियारे याको नाँव नियाव।
जो तोहिं भजै ताहि नहिं भजनो कीनो भलो बनाव॥
बिनु कछु किये जानि अपुनो जन दूनो दुख तेहि देनो।
भली नई यह रीति चलाई उलटो अवगुन लेनो॥
'हरीचंद' यह भलो निबेर्यो ह्वैकै अंतरजामी।
चोरन छाँड़ि छाँड़ि कै डाँड़ी उलटो धन को स्वामी॥ ३॥

जानते जो हम तुमरी बानि।
परम अबार करन की जन पै, हे करुना की खानि॥
तो हम द्वार देखते दूजो होते जहाँ दयाल।
करते नहिं विश्वास बेद पै जिन तोहिं कह्यौ कृपाल॥
अब तो आइ फँसे सरनन में भयो तुम्हारो नाम।
'हरीचंद' तासों मोहिं तारो बान छोड़ि घनश्याम॥ ४॥

प्यारे अब तो सही न जात।
कहा करें कछु बनि नहिं आवत निसि दिन जिय पछितात॥
जैसे छोटे पिंजरा में कोउ पंछी परि तड़पात।
त्योंही प्रान परे यह मेरे छूटन को अकुलात॥
कछु उपाव चलत अति ब्याकुल मुरि मुरि पछरा खात।
'हरीचंद' खींचौ अब कोउ बिधि छाँड़ि पाँच अरु सात॥ ५॥

नाहिं तो हँसी तुम्हारी ह्वैहै।
तुमहीं पै जग दोस धरैगो मेरो दोस न दैहै॥
बेद पुरान प्रमान कहो को मोहिं तारे बिनु लैहै।
तासों तारो 'हरीचंद' को नाहीं तो जस जैहै॥ ६॥

फैलिहैं अपयस तुम्हरो भारी।
फिर तुमकों कोऊ नहिं कहिहैं मोहन पतित-उधारी॥
वेदादिक सब झूठ होंइगे ह्वै जैहैं अति ख्वारी।
तासों कोउ विधि धाइ लीजिए 'हरीचंद' को तारी॥ ७॥

तुम्हरे हित की भाखत बात।
कोउ बिधि अब की तार देहु मोहिं नाहीं तो प्रन जात॥
बूँद चूकि फिरि घट ढरकावत रहि जैहौ पछितात।
बात गए कछु हाथ न ऐहैं क्यौं इतनो इतरात॥
चूक्यौ समय फेर नहिं पैहौ यह जिय धरि के तात।
तारि लीजिए 'हरीचंद' को छाँड़ि पाँच अरु सात॥ ८॥

भरोसो रीझन ही लखि भारी।
हमहूँ को विश्वास होत है मोहन पतित-उधारी॥
जो ऐसो सुभाव नहिं होतो क्यौं अहीर कुल भायो।
तजि कै कौस्तुभ सो मनि गल क्यौं गुंजा-हार धरायो॥
क्रीट मुकुट सिर छोड़ि पखौआ मोरन को क्यों धार्यौ।
फेंट कसी टेंटिन पै मेवन को क्यौं स्वाद बिसार्यौ॥
ऐसी उलटी रीझ देखि कै उपजत है जिय आस।
जग-निंदित 'हरिचंदहु' को अपनावहिगे करि दास॥ ९॥

सम्हारहु अपुने को गिरिधारी।
मोर-मुकुट सिर पाग पेंच कसि राखहु अलक सँवारी॥
हिय हलकत बनमाल उठावहु मुरली धरहु उतारी।
चक्रादिकन सान दै राखौ कंकन फँसन निवारी॥
नूपुर लेहु चढ़ाइ किंकिनी खींचहु करहु तयारी।
पियरो पट परिकर कटि कसि कै बाँधौ हो बनवारी॥
हम नाहीं उनमें जिनको तुम सहजहि दीने तारी।
बानो जुगओ नीके अब की 'हरीचंद' की बारी॥ १०॥

हम तो लोक-भेद सब छोड़्यौ।
जग को सब नाता तिनका सो तुम्हरे कारन तोड़्यौ।।
छाँड़ि सबै अपुनो अरु दूजेन नेह तुम्हहिं सों जोड़्यौ।
'हरीचंद' पै केहि छिब हम सों तुम अपुनो मुख मोड़्यौ।। ११।।

जो पै सावधान ह्वै सुनिए।
तौ निज गुन कछु बरनि सुनाऊँ जो उर में तेहि गुनिए।।
हम नाहिन उन में जिनको तुम तारे गरव बढ़ाई।
बोलि लेहु पृथुराजहि तो कछु मो गुन परै सुनाई।।
चित्रगुप्त जौ बदि हमरे गुन निज खातन लिखि लेहीं।
तौ हम पाप आपुने तिनको हारि तुरत सब देहीं।।
एक समै औगुन गिनिवे कों नागराज प्रन कीनौ।
नहिं गिनि गए सेस बहु रहि गयो सोई नाम तब लीनौ।।
सबै कहत हरि-कृपा बड़ेरी अब हीं परिहि लखाई।
पै जो मो अघ-भय न भागि कै रहै न हृदय दुराई।।
बहुत कहाँ लौं कहौं प्रानपति इतने ही सब मानौ।
'हरीचंद' सों भयो सामना नीके जुगओ बानौ।। १२।।

पिया हौं केहि बिधि अरज करौं।
मति कहुँ चूकि होइ बे-अदबी याही डरन डरौं।।
भोरहि सों मेला सो लागत नर-नारिन को भारी।
न्हात खात बन जात कुंज में केहि बिधि लेहुँ पुकारी।।
महल टहल में रहत लुभाने साँझहि सों सब राती।
तहँ को बिघन बनै कछु कहि कै एहि डर धरकत छाती।।
बड़े बड़े मुनि देव ब्रह्म शिव जहँ मुजरा नहिं पावैं।
तहँ हम पामर जीव कहो क्यौं घुसि कै अरज सुनावैं।।
एक बात बेदन की सुनिकै कछु भरोस जिय आयो।
'हरीचंद' पिय सहस-श्रवन तुम सुनतहि आतुर धायो।। १३।।

—'भारतेन्दु' हरिश्चन्द्र

गंगा वर्णन

नव उज्ज्वल जलधार हार हीरक सी सोहति।
बिच बिच छहरति बूंद मध्य मुक्तामनि पोहति।।
लोल लहर लहि पवन एक पै इक इमि आवत।
जिमि नरगन मन विविध मनोरथ करत मिटावत।।१।।

सुभग स्वर्ग सोपान सरिस सबके मन भावत।
दरसन मज्जन पान त्रिविध भय दूर मिटावत।।
श्रीहरि-पद-नख चन्द्रकान्त मनि द्रवित सुधारस।
ब्रह्म कमंडल मंडन भव खंडन सुर सरबस।।२।।

शिव सिर मालति माल भगीरथ नृपति पुन्य फल।
ऐरावत गज गिरिपति हिमनग कंठहार कल।।
सगर सुवन सठ सहस परस जलमात्र उधारन।
अगनित धारा रूप धारि सागर संचारन।।३।।

काशी कहँ प्रिय जानि ललकि भेंट्यो जग धाई।
सपनेहू नहिं तजी रही अंकम लपटाई।।
कहूँ बँधे नवघाट उच्च गिरिवर सम सोहत।
कहुँ छतरी कहुँ मढ़ी बढ़ी मन मोहत जोहत।।४।।

धवल धाम चहुँ ओर फरहरत धुजा पताका।
घहरत घंटा धुनि धमकत धौंसा करि साका।।
मधुरी नौबत बजत कहूँ नारी नर गावत
वेद पढ़त कहुँ द्विज कहुँ जोगी ध्यान लगावत।।५।।

कहुँ सुन्दरी नहात नीर कर जुगल उछारत।
जुग अंबुज मिलि मुक्त गुच्छ मनु सुच्छ निकारत।।
धोअत सुन्दरि बदन करन अति ही छबि पावत।
वारिधि नाते ससि कलंक मनु कमल मिटावत।।६।।

सुन्दरि ससि मुख नीर मध्य इमि सुन्दर सोहत।
कमलबेलि लहलही नवल कुसुमन मन मोहत॥
दीठि जहां जहं जाति रहति तितही ठहराई।
गंगा छबि हरिचन्द कछू बरनी नहिं जाई॥७॥

—'भारतेन्दु' हरिश्चन्द्र

यमुना वर्णन

तरनि-तनूजा-तट तमाल तरुवर बहु छाये।
झुके कूल सों जल-परसन हित मनहुँ सुहाये॥
किधौं मुकुर में लखत उझकि सब निज निज सोभा।
कै प्रनवत जल जानि परम पावन फल लोभा॥
मनु आतप बारन तीर कों सिमिटि सबै छाये रहत।
कै हरि सेवा हित नै रहे निरखि नैन मन सुख लहत॥१॥

कहूँ तीर पर कमल अमल सोभित बहु भांतिन।
कहूँ सैवालन मध्य कुमुदिनी लगि रहि पांतिन॥
मनु दृग धारि अनेक जमुन निरखत व्रज सोभा।
कै उमगे पिय प्रिया प्रेम के अगनित गोभा॥
कै करि कै कर बहु पीय कों टेरत निज ढिग सोहई।
कै पूजन को उपचार लै चलति मिलन मन मोहई॥२॥

कै पियपद उपमान जानि एहि निज उर धारत।
कै मुख करि बहु भृङ्गन मिस अस्तुति उच्चारत॥
कै व्रज तियगन बदन कमल की झलकत झाईं।
कै व्रज हरिपद-परस-हेत कमला बहु आईं॥
कै सात्विक अरु अनुराग दोउ, व्रजमण्डल बगरे फिरत।
कै जानि लच्छमी-भौन एहि करि सतधा निज जल धरत॥३॥

CENTRAL LIBRARY

तिन पै जेहि छिन चन्द जोति राका-निसि आवति।
जल में मिलि कै नभ अवनी लौं तान तनावति॥
होत मुकुरमय सबै तबै उज्ज्वल इक ओभा।
तन मन नैन जुड़ावत देखि सुंदर सो सोभा॥
सो को कबि जो छबि कहि सकै ताछन जमुना नीर की।
मिलि अवनि और अम्बर रहत छबि इकसी नभ तीर की॥४॥

परत चन्द-प्रतिबिम्ब कहूं जल मधि चमकायो।
लोल लहर लहि नचत कबहुं सोई मन भायो॥
मनु हरि दरसन हेत चन्द जल बसत सुहायो।
कै तरङ्ग कर मुकुर लिये सोभित छवि छायो॥
कै रास रमन में हरि मुकुट आभा जल दिखरात है।
कै जलउर हरि मूरति बसति ता-प्रतिबिंब लखात है॥५॥

कबहुं होत सत चन्द कबहुं प्रगटत दुरि भाजत।
पवन गवन बस बिम्ब रूप जल में बहु साजत॥
मनु ससि भरि अनुराग जमुनजल लोटत डोलै।
कै तरङ्ग की डोर हिंडोरन करत कलोलै॥
कै बाल गुड़ी नभ में उड़ी सोहत इत उत धावती।
कै अवगाहत डोलत कोऊ ब्रजरमनी जल आवती॥६॥

मनु जुग पच्छ प्रतच्छ होत मिटि जात जमुन जल।
कै तारागन ठगत लुकत प्रगटत ससि अविकल॥
कै कालिन्दी नीर तरङ्ग जितो उपजावत।
तितनो ही धरि रूप मिलन हित तासों धावत॥
कै बहुत रजत चकई चलत कै फुहार जल उच्छरत।
कै निसिपति मल्ल अनेक बिधि उठि बैठत कसरत करत॥७॥

कूजत कहुं कलहंस कहूं मज्जत पारावत।
कहुं कारंडव उड़त कहूं जलकुक्कुट धावत॥
चक्रवाक कहुं बसत कहूं बक ध्यान लगावत।
सुक पिक जल कहुं पियत कहूं भ्रमरावलि गावत॥
कहुं तट पर नाचत मोर बहु रोर विविध पच्छी करत।
जलपान न्हान करि सुख भरे तट सोभा सब निज धरत॥८॥

कहूं बालुका बिमल सकल कोमल बहु छाई।
उज्जल झलकत रजत सिढ़ी मनु सरस सुहाई॥
पिय के आगम हेत पांवड़े मनहुं बिछाये।
रत्नरासि करि चूर कूल में मनु बगराये॥
मनु मुक्त मांग सोभित भरी, श्यामनीर चिकुरन परसि।
सतगुन छायो कै तीर में, ब्रज निवास लखि हिय हरसि॥९॥

—'भारतेन्दु' हरिश्चन्द्र

हास्य

(गिरिजा-सिन्धुजा संवाद)

सिन्धु-सुता इक दिना सिधाई श्री गिरि-सुता दुवारे।
विघ्न-विदारण मातु कहाँ? यह भाख्यो लागि किवारे।
कष्ट-निवारन मंगल-करनी जाके सब गुन गावें।
मेरे द्वार पास तिहि कारण विघन रहन नहिं पावें।
कहाँ भिखारी गयो यहाँ ते करै जो तुव प्रतिपालो?
होगो वहाँ जाय किन देखो बलि पै परचो कसालो।

CENTRAL LIBRARY

गरल-अहारी कहाँ ? बताओ लेहुँ आप सों लेखो।
बार बार कत पूँछति मोकों जाय पूतना देखो।
बहुरि पियारी मोहि बताओ भुजँग-नाह परवीनो ?
देखहु जाय शेष-शय्या पर जहाँ शयन तिन कीनो।
कहाँ पशुपती मोहि दिखाओ ? गोकुल डगर पधारो।
शैलपति कहँ ? कर में धारै गोवरधनहि निहारो।
सत्यनरायण हँसि के कमला भीतर चरण पधारै।
अस आमोद प्रमोद दोऊ को हमरे शोक निवारै।

—सत्यनारायण कविरत्न

शरद

१

बोरत प्रेम-पयोनिधि में ऋतु शारदी आई दया निज जोरत।
तोरत फोरत ग्रीषम कौ बल बारिद को बल तोरत मोरत।
लोरत खंजन पै सतदेव जू छोरत कांस में सांस बहोरत।
चोरत मंजु चितै चित चायनि चाँदनी चारु पियूष निचोरत।।

२

आओ लखें छवि शरद की, करि दूरि संशय भूरि।
मिलि लेंहि स्वागत तास, जास उजास चहुँधा पूरि।
नहि प्रात बात समात अंग, उमंग हिय अधिकाय।
जलजात-पातनि कोर हिम जलकीय चञ्चल आय।

मालती सौरभ चमेली छिटकि कलिकनि पास।
नदि कूल फूले लखि परत बहु स्वेत स्वेत जु काँस।
जहँ कंज बिकसत, कुमुद बहु अरु केतकी कल कुन्ज।
गूंज कर रस लेत, दीसत रसिक षटपद पुन्ज।
पिय पिय पपिहा करि रहयो, अब कहँ मिलै जल-स्वाँति।
उन्नत मुखहि करि ब्योम दिशि नहि लखत मोरन पाँति।
गरद बिन छित, शालि सोहत जरद बहु लहराँय।
पङ्कहु नसानी, शङ्क काकी ? चलहि सब इतराँय।
नील निर्मल नभ लसै निशिनाथ मंजु प्रकास।
सुन्दर सरोवर सलिल में, ता सुघर छाया-भास।
चारु चमकनि चाँदनी चूनर धरें छबि जाल।
माधुर्यमय शशि जासु मुख उड़गन सुमौक्तिक माल।
नील उत्पल चारु-चख औ चपल लहरी सैन।
मानहुँ चलावति मोहिबे युवजन उरहि सुख दैन।
सारस सरस नव गान मनु कटि किङ्किणी सरसाय।
रव मत्त बाल मराल नूपुर कलित ध्वनि जन छाय।
कुसुम कुसुमित काँस के मधु हास शोभा पाय।
ऋतु-शारदी किधौं कामिनी कमनीय यह दरसाय।
"सतदेव" प्रेमिन प्रेम बस टकराय पावस धाय।
सज्जन दरद-दारद प्रिये! आयो शरद सुखदाय॥

—सत्यनारायण कविरत्न

———

हेमन्त

सुन्दर शोभित सुखद शरद हेमन्तहि भेंटी आय।
जैसे बालक देखि माय को गिरै गोद में धाय।
जानि परै जमुना जल पैठत, पैर गये कटि दूर।
'सी सी' करत किनारे आवें, जाड़ा है भरपूर॥ १

पहले से नहिं कमल खिलैं अब, निशि में परै तुषार।
स्वच्छ-सेत-हिमयुक्त हिमाचल दर्शन योग बहार।
सूरज भयो छपा-कर जानो धूप गई पतराय।
मनहुँ शीत भयभीत याहि लखि वारिद लेय छिपाय॥ २
हरित खेतमय गाँवन भीतर हिम कण भीगी दूब।
मटर फली अरु कोमल मूली मीठी लागै खूब॥
ज्वार, बाजरा, मूँग, मसीना, मोठ, रमास, गुवार।
सन, तिल, आदिक, अरहर तजि, सब कटि आये घर द्वार॥ ३
"रबी" जहाँ सींची जावै, तहँ गेहूँ जौ लहराँय।
सरसों सुमन प्रफुल्लित सोहैं, अलि माला मँडराँय।
प्रकृति दुकूल हरा धारण कर, आनन अपना खोल।
हाव भाव मानहुँ बतलावै ठाड़ी करै कलोल॥ ४
बरहा खोदत श्रमी कृषक बर जल नहिं कहुँ कढ़ि जाय।
खुरपी और फावड़ा कर गहि क्यारी कार्टाहि धाय।
चरसा गहैं "राम आये" कहि गाय गीत ग्रामीन।
जीवन हेत देत खेतन कहँ जीवन नित्य नवीन॥ ५
सीर समीर तीर सम लागत, करत करेजे पीर।
दिन छीजत, रजनी बाढ़ति जिमि द्रुपद-सुता को चीर।
धुँआ न चैन लैन छिन देवै अश्रु बहावें नैन।
छाती तले अँगीठी सुलगे ताहि उठावें पै न॥ ६
ज्वाला तापि, दुलाई ओढ़ैं रहैं धूप में जाय।
चाय भरा सविशाला प्याला पीवें हिय हरषाय।
साल दुसाला धारें निस दिन, गरम मसाला खात।
सीत कसाला भाला उरमें लगै न पाला जात॥ ७
मृगमदादि सौरभ सुख कारक सेवन करैं सुहाय।
भोजन समय कम्प तऊ होवै हाथ जाहिं ठिठुराय।
पान खाँय डिबिया भर-भर के तबहुँ न कष्ट नसाय।
तरनि तापते तापै बिन कब सीत कसाला जाय? ८

जोगी जती सती संन्यासी कुछ का कुछ रहे गाय।
माड़ादार भृत्य माया का नहिं जाड़ा यह भाय।
धीरज तकिया देकर प्यारे ओढ़ि रजाई ज्ञान।
रमण कीजिये सद ग्रन्थन में शान्ति स्त्री मान॥ ९
जावें युवक पाठशाला जब पहन कोट पतलून।
मोजे डाट बूट खटकावत सीत लगै तऊ दून।
"पैड्रो" अथवा और 'सेगरेट' 'सेफ मैच' से बाल।
इंजन का सा धुआँ उड़ावें तो भी बुरा हवाल॥ १०
जराजर देह, दीन जन दुःखित, कँपकँपात बिलखात।
हाट बाट अरु घाट घाट पर माँगत खात लखात।
"अब की कठिन प्राण रक्षा है" कहि कहि के यह बात।
बड़े कसाई, अति दुखदाई, जाड़े से हठि जात॥ ११
निस्सहाय निर्बल इन आरत भारतवासिन ओर।
देश हितैषी धनी धार्मिक फेरौ लोचन कोर।
हे हेमन्त हिमाचल वासी! अधिक कष्ट जनि देहु।
विनय सत्यनारायण की यह इतनी तुम सुनि लेहु॥ १२

—सत्यनारायण कविरत्न

———

उद्धव-शतक

न्हात जमुना में जलजात एक देख्यौ जात
जाकौ अध-ऊरध अधिक मुरझायौ है।
कहै रतनाकर उमहि गहि स्याम ताहि
बास-बासना सौं नेंकु नासिका लगायौ है॥

त्यौंहीं कछु घूमि झूमि बेसुध भए कै हाय
पाय परे उखरि अभाय मुख छायौ है।
पाए घरी द्वैक मैं जगाइ ल्याइ ऊधौ तीर
राधा-नाम कीर जब औचक सुनायौ है ॥१

आए भुज-बंध दिए ऊधव-सखा कैं कंध
डग-मग पाय मग धरत धराए हैं।
कहै रतनाकर न बूझैं कछु बोलत औ
खोलत न नैन हूं अचैन चित छाए हैं॥
पाइ बहे कंज मैं सुगंध राधिका कौ मंजु
ध्याए कदली-बन मतंग लौं मताए हैं।
कान्ह गए जमुना नहान पै नए सिर सौं
नीकैं तहां नेह की नदी मैं न्हाइ आए हैं ॥२

देखि दूरि ही तैं दौरि पौरि लगि भेंट ल्याइ
आसन दै सांसनि समेटि सकुचानि तैं।
कहै रतनाकर यौं गुनन गुबिंद लागे
जौलौं कछू भूले से भ्रमे से अकुलानि तैं॥
कहा कहैं ऊधौ सौं कहैं हूं तौ कहां लौं कहैं
कैसैं कहैं कहैं पुनि कौन सी उठानि तैं।
तौलौं अधिकाई तैं उमगि कंठ आइ भिचि
नीर ह्वै बहन लागी बात अंखियानि तैं ॥३

बिरह-बिथा की कथा अकथ अथाह महा
कहत बनै न जो प्रबीन सुकबीनि सौं।
कहै रतनाकर बुझावन लगे ज्यौं कान्ह
ऊधौ कौं कहन-हेत ब्रज-जुवतीनि सौं॥

गहबरि आयौ गरौ भभरि अचानक त्यौं
प्रेम पर्‌यौ चपल चुचाइ पुतरीनि सौं।
नैंकु कही बैननि, अनेकु कही नैननि सौं,
रही-सही सोऊ कहि दीनी हिचकीनि सौं ॥४

नंद औ जसोमति के प्रेम-पगे पालन की
लाड़-भरे लालन की लालच लगावती।
कहै रतनाकर सुधाकर-प्रभा सौं मढ़ी
मंजु मृगनैननि के गुन-गन गावती॥
जमुना-कछारनि की रंग-रस-राननि की
बिपिन-बिहारनि की हौंस हुमसावती।
सुधि ब्रज-बासिनि दिवैया सुख-रासिनि की
ऊधौ नित हमकौं बुलावन कौं आवती॥५

चलत न चार्‌यौ भांति कोटिन बिचार्‌यौ तऊ
दाबि दाबि हार्‌यौ पै न टार्‌यौ टसकत है।
परम गहीली बसुदेव-देवकी की मिली
चाह-चिमटी हूं सौं न खैंचौ खसकत है॥
कढ़त न क्यौं हूं हाय बिथके उपाय सबै
धीर-आक-छीर हूं न धारैं धसकत है।
ऊधौ ब्रज-बास के बिलासनि कौ ध्यान धंस्यौ
निसि-दिन कांटे लौं करेजैं कसकत है॥६

रूप-रस पीवत अघात ना हुते जो तब
सोई अब आंस ह्वै उबरि गिरिबौ करैं।
कहै रतनाकर जुड़ात हुते देखैं जिन्हैं
याद किएं तिनकौं अंवां सौं घिरिबौ करैं॥

दिननि के फेर सौं भयौ है हेर-फेर ऐसौ
जाकौं हेरि फेरि हेरिबोई हिरिबौ करैं।
फिरत हुते जू जिन कुंजनि मैं आठौं जाम
नैननि मैं अब सोई कुंज फिरिबौ करैं॥७

गोकुल की गैल-गैल गैल-गैल ग्वालनि की
गोरस कैं काज लाज-बस कै बहाइबौ।
कहै रतनाकर रिझाइबौ नवेलिनि कौं
गाइबौ गवाइबौ औ नाचिबौ नचाइबौ॥
कीबौ स्रमहार मनुहार कै बिबिध बिधि
मोहिनी मृदुल मंजु बांसुरी बजाइबौ।
ऊधौ सुख-संपति-समाज ब्रज-मंडल के
भूलैं हूं न भूलैं भूलैं हमकौं भुलाइबौ॥८

मोर के पखौवनि कौ मुकुट छबीलौ छोरि
क्रीट मनि-मंडित धराइ करिहैं कहा।
कहै रतनाकर त्यौं माखन-सनेही बिनु
षट-रस व्यंजन चबाइ करिहैं कहा॥
गोपी ग्वाल-बालनि कौं झोंकि बिरहानल मैं
हरि सुर-बृंद की बलाइ करिहैं कहा।
प्यारौ नाम गोविंद गुपाल कौ बिहाइ हाय
ठाकुर त्रिलोक के कहाइ करिहैं कहा॥९

कहत गुपाल माल मंजु मनि-पुंजनि की
गुंजनि की माल की मिसाल छबि छावै ना।
कहै रतनाकर रतन-मै किरीट अच्छ
मोर-पच्छ-अच्छ-लच्छ-अंसहू सु-भावै ना॥

जसुमति मैया की मलैया अरु माखन कौ
काम-धेनु-गोरस हू गूढ़ गुन पावै ना।
गोकुल की रज के कनूका औ तिनूका सम
संपति त्रिलोक की बिलोकन में आवै ना ॥१०

भेजे मनभावत के ऊधव के आवन की
सुधि ब्रज-गाँवनि मैं पावन जबै लगीं।
कहै रतनाकर गुवालिनि की झौरि झौरि
दौरि-दौरि नंद-पौरि आवन तबै लगीं॥
उझकि-उझकि पदकंजनि के पंजनि पै
पेखि पेखि पाती छाती छोहनि छ्वै लगीं।
हमकौं लिख्यौ है कहा, हमकौं लिख्यौ है कहा,
हमकौं लिख्यौ है कहा कहन सबै लगीं॥११

कान्ह-दूत कैधौं ब्रह्म-दूत ह्वै पधारे आप,
धारे प्रन फेरन कौ मति ब्रजवारी की।
कहै रतनाकर पै प्रीति-रीति जानत ना,
ठानत अनीति आनि नीति लै अनारी की॥
मान्यौ हम, कान्ह ब्रह्म एकही, कह्यौ जो तुम,
तौहूँ हमैं भावति न भावना अन्यारी की।
जैहै बनि-बिगरि न बारिधिता बारिधि की,
बूँदता बिलैहै बूँद बिबस बिचारी की॥१२

आए हौ सिखावन कौं जोग मथुरा तैं तोपै,
ऊधौ ये बियोग के बचन बतरावौ ना।
कहै रतनाकर दया करि दरस दीन्यौ,
दुख दरिबै कौं, तोपै अधिक बढ़ावौ ना॥

टूक-टूक ह्वैहै मन-मुकुर हमारौ हाय,
चूकि हूँ कठोर-बैन-पाहन चलावौ ना।
एक मनमोहन तौ बसिकै उजार्‌यो मोहिं,
हिय मैं अनेक मनमोहन बसावौ ना॥१३

जोग को रमावै औ समाधि को जगावै इहाँ,
दुख-सुख-साधनि सौं निपट निबेरी हैं।
कहै रतनाकर न जानैं क्यौं इतै धौं आइ,
साँसनि की सासना की बासना बखेरी हैं॥
हम जमराज की धरावति जमा न कछू,
सुर-पति संपति की चाहति न ढेरी हैं।
चेरी हैं न ऊधौ ! काहू ब्रह्म के बबा की हम
सूधौ कहे देति एक कान्ह की कमेरी हैं॥१४

चाहत निकारन तिन्हैं जो उर-अंतर तैं,
ताकौ जोग नाहिं जोग-मंतर तिहारे मैं।
कहै रतनाकर बिलग करिबै मैं होति,
नीति बिपरीत महा कहति पुकारे मैं॥
तातै तिन्हैं ल्याइ हिय तैं हमारे बेगि,
सोचियै उपाय फेरि चित चेतवारे मैं।
ज्यौं-ज्यौं बसे जात दूरि दूरि प्रान-मूरि,
त्यौं-त्यौं धँसे जात मन-मुकुर हमारे मैं॥१५

सुनीं गुनीं समझीं तिहारी चतुराई जिती,
कान्ह की पढ़ाई कविताई कुबरी की हैं।
कहै रतनाकर त्रिकाल हू त्रिलोक हू मैं,
आनैं आन नैंकु ना त्रिदेव की कही की हैं॥

कहहिँ प्रतीति प्रीति नीति हूँ त्रिबाचा बाँधि,
ऊधौ साँच मन की हिये की अरु जी की है ।
वे तौ हैं हमारे ही हमारे ही हमारे ही औ,
हम उनहीं की उनही की उनही की हैं ॥१६

प्रेम-मद-छाके पग परत कहाँ के कहाँ
थाके अंग नैननि सिथिलता सुहाई है।
कहै रतनाकर यौं आवत चकात ऊधौ
मानौ सुधियात कोऊ भावना भुलाई है ॥
धारत धरा पै ना उदार अति आदर सौं
सारत बहोलिनि जो आँस-अधिकाई है।
एक कर राजै नवनीत जसुदा कौ दियौ
एक कर बंसी बर राधिका-पठाई है ॥१७

छावते कुटीर कहूँ रम्य जमुना कैं तीर,
गौन रौन-रेती सौं कदापि करते नहीं।
कहै रतनाकर बिहाइ प्रेम-गाथा गूढ़,
स्रौन रसना मैं रस और भरते नहीं ॥
गोपी ग्वाल बालनि के उमड़त आँसू देखि,
लेखि प्रलयागम हूँ नैंकु डरते नहीं।
होतौ चित चाव जौ न रावरे चितावन कौ,
तजि ब्रज-गाँव इतै पावँ धरते नहीं ॥१८

—जगन्नाथदास 'रत्नाकर'

———

CENTRAL LIBRARY

यशोधरा (१)

(१)

प्रियतम ! तुम श्रुति-पथ से आये ।
तुम्हें हृदय में रख कर मैंने अधर-कपाट लगाये ।
मेरे हास-विलास ! किन्तु क्या भाग्य तुम्हें रख पाये ?
दृष्टि-मार्ग से निकल गये ये तुम रसमय मनभाये ।
प्रियतम ! तुम श्रुति-पथ से आये ।
यशोधरा क्या कहे और अब, रहो कहीं भी छाये,
मेरे ये निःश्वास व्यर्थ, यदि तुमको खींच न लाये ।
प्रियतम ! तुम श्रुति-पथ से आये ।

(२)

सखि, वसन्त-से कहाँ गये वे,
मैं ऊष्मा-सी यहाँ रही ।
मैंने ही क्या सहा, सभी ने
मेरी बाधा-व्यथा सही ।
तप मेरे मोहन का उद्धव धूल उड़ाता आया,
हाय ! विभूति रमाने का भी मैंने योग न पाया ।
सूखा कण्ठ, पसीना छूटा, मृगतृष्णा की माया,
झुलसी दृष्टि, अँधेरा दीखा, दूर गई वह छाया ।
मेरा ताप और तप उनका,
जलती है हा ! जठर मही,
मैंने ही क्या सहा, सभी ने
मेरी बाधा-व्यथा सही ।
जागी किसकी वाष्पराशि, जो सूने में सोती थी ?
किसकी स्मृति के बीज उगे ये, सृष्टि जिन्हें बोती थी ?
अरी वृष्टि, ऐसी ही उनकी दया-दृष्टि रोती थी,
विश्व-वेदना की ऐसी ही चमक उन्हें होती थी !

किसके भरे हृदय की धारा,
शतधा होकर आज बही ?
मैंने ही क्या सहा, सभी ने
मेरी बाधा-व्यथा सही।

उनकी शान्ति-कान्ति की ज्योत्स्ना जगती है पल-पल में,
शरदातप उनके विकास का सूचक है थल-थल में,
नाच उठी आशा प्रतिदल पर किरणों की झल-झल में,
खुला सलिल का हृदय-कमल खिल हंसों के कल-कल में।

पर मेरे मध्याह्न ! बता क्यों
तेरी मूर्च्छा बनी वही ?
मैंने ही क्या सहा, सभी ने
मेरी बाधा-व्यथा सही।

हेमपुञ्ज हेमन्तकाल के इस आतप पर वारूँ,
प्रियस्पर्श की पुलकावलि में कैसे आज बिसारूँ ?
किन्तु शिशिर, ये ठंढी साँसें हाय ! कहाँ तक धारूँ ?
तन गारूँ, मन मारूँ पर क्या मैं जीवन भी हारूँ ?

मेरी बाँह गही स्वामी ने,
मैंने उनकी छाँह गही,
मैंने ही क्या सहा, सभी ने
मेरी बाधा-व्यथा सही।

पेड़ों ने पत्ते तक, उनका त्याग देख कर, त्यागे,
मेरा धुँधलापन कुहरा बन छाया सबके आगे।
उनके तप के अग्नि-कुण्ड-से घर-घर में हैं जागे,
मेरे कम्प, हाय ! फिर भी तुम नहीं कहीं से भागे।

पानी जमा, परन्तु न मेरे
खट्टे दिन का दूध-दही,
मैंने ही क्या सहा, सभी ने
मेरी बाधा-व्यथा सही।

आशा से आकाश थमा है, श्वास-तन्तु कब टूटे?
दिन-मुख दमके, पल्लव चमके, भवँ ने नव रस लूटे!
स्वामी के सद्भाव फैल कर फूल-फूल में फूटे,
उन्हें खोजने को ही मानो नूतन निर्झर छूटे।

उनके श्रम के फल सब भोगें,
यशोधरा की विनय यही,
मैंने ही क्या सहा, सभी ने
मेरी बाधा-व्यथा सही।

—मैथिलीशरण गुप्त

राहुल-जननी

(१)

चुप रह, चुप रह, हाय अभागे!
रोता है, अब किसके आगे?
तुझे देख पाते वे रोता,
मुझे छोड़ जाते क्यों सोता?
अब क्या होगा? तब कुछ होता,
सोकर हम खोकर ही जागे!
चुप रह, चुप रह, हाय अभागे!

बेटा मैं तो हूँ रोने को,
तेरे सारे मल धोने को ;
हँस तू, है सब कुछ होने को,
भाग्य आयँगे फिर भी भागे ;
चुप रह, चुप रह, हाय अभागे !
तुझको क्षीर पिला कर लूँगी,
नयन-नीर ही उसको दूँगी,
पर क्या पक्षपातिनी हूँगी ?
मैंने अपने सब रस त्यागे।
चुप रह, चुप रह, हाय अभागे !

(२)

चेरी भी वह आज कहाँ, कल थी जो रानी ;
दानी प्रभु ने दिया उसे क्यों मन यह मानी ?
अबला-जीवन, हाय ! तुम्हारी यही कहानी—
आँचल में है दूध और आँखों में पानी !
मेरा शिशु-संसार वह, दूध पिये, परिपुष्ट हो,
पानी के ही पात्र तुम, प्रभो रुष्ट या तुष्ट हो।

—मैथिलीशरण गुप्त

यशोधरा (२)

पधारो, भव भव के भगवान।
रखली मेरी लज्जा तुमने, आओ अत्रभवान !
नाथ, विजय है यही तुम्हारी,
दिया तुच्छ को गौरव भारी।
अपनाई मुझ-सी लघु नारी,
होकर महा महान।
पधारो, भव भव के भगवान।

मैं थी सन्ध्या का पथ हेरे,
आ पहुँचे तुम सहज सबेरे।
धन्य कपाट खुले ये मेरे!
दूँ अब क्या नव-दान?
पधारो, भव भव के भगवान!

मेरे स्वप्न आज ये जागे,
अब ये उपालम्भ क्यों भागे,
पाकर भी अपना धन आगे
भूली-सी मैं भान।
पधारो, भव भव के भगवान!

दृष्टि इधर जो तुमने फेरी,
स्वयं शान्त जिज्ञासा मेरी।
भय-संशय की मिटी अँधेरी,
इस आभा की आन!
पधारो, भव भव के भगवान!

यही प्रणति है उन्नति मेरी,
हुई प्रणय की परिणति मेरी,
मिली आज मुझको गति मेरी,
क्यों न करूँ अभिमान?
पधारो, भव भव के भगवान!

पुलक पक्ष्म परिगीत हुए ये,
पद-रज पोंछ पुनीत हुए ये!
रोम रोम शुचि-शीत हुए ये,
पा कर पर्वस्नान!
पधारो, भव भव के भगवान!

इन अधरों के भाग्य जगाऊँ ;
उन गुल्फों की मुहर लगाऊँ !
गई वेदना, अब क्या गाऊँ?
मग्न हुई मुसकान।
पधारो, भव भव के भगवान !

कर रक्खा, यह कृपा तुम्हारी ;
मैं पद-पद्मों पर ही वारी।
चरणामृत करके ये खारी
अश्रु करूँ अब पान।
पधारो, भव भव के भगवान !

—मैथिलीशरण गुप्त

साकेत

(ऊर्मिला-विरह)

सखे, जाओ तुम हँसकर भूल, रहूँ मैं सुध करके रोती।
तुम्हारे हँसने में हैं फूल, हमारे रोने में मोती !
मानती हूँ, तुम मेरे साध्य,
अहर्निशि एक मात्र आराध्य,
साधिका मैं भी किन्तु अबाध्य, जागती होऊँ, या सोती।
तुम्हारे हँसने में हैं फूल, हमारे रोने में मोती !

सफल हो सहज तुम्हारा त्याग,
नहीं निष्फल मेरा अनुराग,
सिद्धि है स्वयं साधना-भाग, सुधा क्या, क्षुधा जो न होती।
तुम्हारे हँसने में हैं फूल, हमारे रोने में मोती!
काल की रुके न चाहे चाल,
मिलन से बड़ा विरह का काल,
वहाँ लय, यहाँ प्रलय सुविशाल! दृष्टि में दर्शनार्थ धोती!
तुम्हारे हँसने में हैं फूल, हमारे रोने में मोती!

अर्थ, तुझे भी हो रही पदप्राप्ति की चाह?
क्या इस जलते हृदय में नहीं और निर्वाह?

स्वजनि, रोता है मेरा गान,
प्रिय तक नहीं पहुँच पाती है उसकी कोई तान।
झिलता नहीं समीर पर इस जी का जंजाल,
झड़ पड़ते हैं शून्य में बिखर सभी स्वर-ताल।
विफल आलाप-विलाप समान,
स्वजनि, रोता है मेरा गान।
उड़ने को है तड़पता मेरा भावानन्द,
व्यर्थ उसे पुचकार कर फुसलाते हैं छन्द।
दिला कर पद-गौरव का ध्यान।
स्वजनि, रोता है मेरा गान।
अपना पानी भी नहीं रखता अपनी बात,
अपनी ही आँखें उसे ढाल रहीं दिन-रात।
जना देते हैं सभी अजान,
स्वजनि, रोता है मेरा गान।

दुख भी मुझसे विमुख हो करें न कहीं प्रयाण,
आज उन्हींमें तो तनिक अटके हैं ये प्राण।
विरह में आ जा, तू ही मान!
स्वजनि, रोता है मेरा गान।

यही आता है इस मन में,
छोड़ धाम-धन जा कर मैं भी रहूँ उसी वन में।
प्रिय के व्रत में विघ्न न डालूँ, रहूँ निकट भी दूर,
व्यथा रहे, पर साथ साथ ही समाधान भरपूर।
हर्ष डूबा हो रोदन में,
यही आता है इस मन में।
बीच बीच में उन्हें देख लूँ मैं झुरमुट की ओट,
जब वे निकल जायँ तब लेटूँ उसी धूल में लोट।
रहें रत वे निज साधन में,
यही आता है इस मन में।
जाती जाती, गाती गाती, कह जाऊँ यह बात—
धन के पीछे जन, जगती में उचित नहीं उत्पात।
प्रेम की ही जय जीवन में।
यही आता है इस मन में।

अब जो प्रियतम को पाऊँ!
तो इच्छा है, उन चरणों की रज में आप रमाऊँ!
आप अवधि बन सकूँ कहीं तो क्या कुछ देर लगाऊँ,
मैं अपने को आप मिटाकर, जाकर उनको लाऊँ।
ऊषा-सी आई थी जग में, सन्ध्या-सी क्या जाऊँ?
श्रान्त पवन-से वे आवें, मैं सुरभि-समान समाऊँ!
मेरा रोदन मचल रहा है, कहता है, कुछ गाऊँ,
उधर गान कहता है, रोना आवे तो मैं आऊँ!

इधर अनल है और उधर जल, हाय! किधर मैं जाऊँ!
प्रबल बाष्प, फट जाय न यह घट, कह तो हाहा खाऊँ?

सिर-माथे तेरा यह दान,
हे मेरे प्रेरक भगवान!
अब क्या माँगूँ भला और मैं फैला कर ये हाथ?
मुझे भूल कर ही विभु-वन में विचरें मेरे नाथ।

मुझे न भूले उनका ध्यान,
हे मेरे प्रेरक भगवान!
डूब बची लक्ष्मी पानी में, सती आग में पैठ,
जिये ऊर्मिला, करे प्रतीक्षा, सहे सभी घर बैठ।

विधि से चलता रहे विधान,
हे मेरे प्रेरक भगवान!
दहन दिया तो भला सहन क्या होगा तुझे अदेय?
प्रभु की ही इच्छा पूरी हो, जिसमें सबका श्रेय।

यही रुदन है मेरा गान,
हे मेरे प्रेरक भगवान!"
अवधि-शिला का उर पर था गुरु भार,
तिल तिल काट रही थी दृगजल-धार।

—मैथिलीशरण गुप्त

ऊर्मिला-मिलाप

मानों मज्जित हुई पुरी जय जय के रव में,
पुरजन, परिजन लगे इधर अभिषेकोत्सव में।

पाई प्रभु से इधर नई छवि राज-भवन ने,
सागर का माधुर्य पी लिया मानों घन ने!
पाकर अहा! उमंग ऊर्मिला-अंग भरे थे,
आली ने हँस कहा—"कहाँ ये रंग भरे थे?
सुप्रभात है आज, स्वप्न की सच्ची माया!
किन्तु कहाँ वे गीत, यहाँ जब श्रोता आया!
फड़क रहा है वाम नेत्र, उच्छ्वसित हृदय है,
अब भी क्या तन्वंगि, तुम्हें संशय या भय है?
आओ, आओ, तनिक तुम्हें सिंगार सजाऊँ,
बरसों की मैं कसक मिटाऊँ, बलि बलि जाऊँ।"
"हाय! सखी, शृंगार? मुझे अब भी सोहेंगे?
क्या वस्त्रालंकार मात्र से वे मोहेंगे?
मैंने जो वह 'दग्ध-वर्त्तिका' चित्र लिखा है,
उसमें तू क्या आज उठाने चली शिखा है?
नहीं, नहीं, प्राणेश मुझीसे छले न जावें,
जैसी हूँ मैं, नाथ मुझे वैसा ही पावें।
शूर्पणखा मैं नहीं—हाय, तू तो रोती है!
अरी, हृदय की प्रीति हृदय पर ही होती है।"
"किन्तु देख यह वेश दुखी होंगे वे कितने?"
"तो, ला भूषण-वसन, इष्ट हों तुझको जितने।
पर यौवन-उन्माद कहाँ से लाऊँगी मैं?
वह खोया धन आज कहाँ सखि, पाऊँगी मैं?"
"अपराधी-सा आज वही तो आने को है,
बरसों का यह दैन्य सदा को जाने को है।
कल रोती थीं आज मान करने बैठी हो,
कौन राग यह, जिसे गान करने बैठी हो?
रवि को पाकर पुनः पद्मिनी खिल जाती है,
पर वह हिमकण विना कहाँ शोभा पाती है?"

"तो क्या आँसू नहीं सखी, अब इन आँखों में ?
फूटें, पानी न हो बड़ी भी जिन आँखों में !"
"प्रीति-स्वाति का पिया शुक्ति बन बन कर पानी,
राजहंसिनी, चुनो रीति-मुक्ता अब रानी !"
"विरह रुदन में गया, मिलन में भी मैं रोऊँ,
मुझे और कुछ नहीं चाहिए, पद-रज धोऊँ।
जब थी तब थी आलि, ऊर्मिला उनकी रानी,
वह बरसों की बात आज होगई पुरानी !
अब तो केवल रहूँ सदा स्वामी की दासी,
मैं शासन की नहीं, आज सेवा की प्यासी।
युवती हो या आलि, ऊर्मिला बाला तन से,
नहीं जानती किन्तु स्वयं, क्या है वह मन से !
देखूँ, कह, प्रत्यक्ष आज अपने सपने को,
या सजबज कर आप दिखाऊँ मैं अपने को ?
सखि, यथेष्ट है यही धुली धोती ही मुझको,
लज्जा उनके हाथ, व्यर्थ चिन्ता है तुझको।
उछल रहा यह हृदय अंक में भर ले आली,
निरख तनिक तू आज ढीठ सन्ध्या की लाली !
मान करूँगी आज ? मान के दिन तो बीते,
फिर भी पूरे हुए सभी मेरे मनचीते।
टपक रही वह कुंज-शिला वाली शेफाली,
जा नीचे, दो चार फूल चुन, ले आ आली !
वनवासी के लिए सुमन की भेंट भली वह !"
"किन्तु उसे तो कभी पा चुका प्रिये, अली यह !"
देखा प्रिय को चौंक प्रिया ने, सखी किधर थी ?
पैरों पड़ती हुई ऊर्मिला हाथों पर थी !
लेकर मानों विश्व-विरह उस अन्तःपुर में,
समा रहे थे एक दूसरे के वे उर में।

रोक रही थी उधर मुखर मैना की चेरी--
'यह हत हरिणी छोड़ गये क्यों नये अहेरी!'
"नाथ, नाथ, क्या तुम्हें सत्य ही मैंने पाया?"
"प्रिये, प्रिये, हाँ आज-आज ही-वह दिन आया।
मेघनाद की शक्ति सहन करके यह छाती,
अब भी क्या इन पाद-पल्लवों से न जुड़ाती?
मिला उसी दिन किन्तु तुम्हें मैं खोया खोया,
जिस दिन आर्या बिना आर्य का मन था रोया।
पूर्ण रूप से सुनो, तुम्हें मैंने कब पाया,
जब आर्या का हनूमान ने विरह सुनाया!
अब तक मानो जिसे वेषभूषा में टाला,
अपने को ही आज मुझे तुमने दे डाला।
आंखों में ही रही अभी तक तुम थीं मानों,
अन्तस्तल में आज अचल निज आसन जानों।
परिधि-विहीन सुधांशु-सदृश सन्ताप-विमोचन,
धूल रहित, हिम-धौत सुमन-सा लोचन-रोचन,
अपनी द्युति ने आप उदित, आडम्बर त्यागे,
धन्य अनावृत-प्रकृत-रूप यह मेरे आगे।
जो लक्ष्मण था एक तुम्हारा लोलुप कामी,
कह सकती हो आज उसे तुम अपना स्वामी।"
"स्वामी, स्वामी, जन्म जन्म के स्वामी मेरे!
किन्तु कहाँ वे अहोरात्र, वे साँझ-सवेरे!
खोई अपनी हाय! कहाँ वह खिल खिल खेला?
प्रिय, जीवन की कहाँ आज वह चढ़ती बेला?"
काँप रही थी देह-लता उसकी रह रह कर,
टपक रहे थे अश्रु कपोलों पर बह बह कर।
"वह वर्षा की बाढ़, गई, उसको जाने दो,
शुचि-गभीरता प्रिये, शरद की यह आने दो।

धरा-धाम को राम-राज्य की जय गाने दो,
लाता है जो समय प्रेम-पूर्वक, लाने दो।

—मैथिलीशरण गुप्त

प्रिय-प्रवास

आयी बेला हरि-गमन की छा गयी खिन्नता-सी
थोड़े ऊँचे नलिनपति हो जा छिपे पादपों में ;
आगे सारे स्वजन करके, साथ अक्रूर को ले
धीरे-धीरे स-जनक कढ़े सद्म में से मुरारी ;

आते आँसू अति कठिनता साथ रोके दृगों के
होती खिन्ना हृदय-तल के सैंकड़ों संशयों से,
नाना वामा परम दुखिता, संग शोकाभिभूता
पीछे प्यारे तनय, निकली गेह में से यशोदा।

द्वारे आया ब्रज-नृपति को देख यात्रा लिये ही,
भोला भाला निरख मुखड़ा फूल से लाड़िलों का ;
खिन्ना दीना परम लख के नन्द की भामिनी को,
चिन्ता-डूबी सकल जनता, हो उठी कम्पमाना।

कोई रोया, नहि जल रुका लाख रोके दृगों का,
कोई आहें सदुख भरता ; हो गया बावला-सा,
कोई बोला, 'सकल ब्रज के जीवनाधार प्यारे,
यों लोगों को व्यथित करके आज जाते कहाँ हो ?'

रोता, होता विकल अति ही एक आभीर बूढ़ा,
दीनों के से बचन कहता पास अक्रूर आया,

बोला—"कोई जतन जन को आप ऐसा बतावें,
मेरे प्यारे कुँवर मुझ से आज न्यारे न होवें।"
"मैं बूढ़ा हूँ यदि कुछ कृपा आप चाहें दिखाना,
तो मेरी है विनय इतनी श्याम को छोड़ जावें।
हा ! हा ! सारी ब्रज-अवनि का प्राण है लाल मेरा,
क्यों जीयेंगे हम सब उसे आप ले जायँगे जो ?"

"रत्नों की है नहि कुछ कमी आप लें रत्न ढेरों,
सोना-चाँदी सहित धन भी गाड़ियों आप ले लें।
गायें ले लें, गज तुरँग भी आप ले लें अनेकों,
लेवें मेरे न निजधन को जोड़ता हाथ मैं हूँ।"

"जो है प्यारी धरनि ब्रज की यामिनी के समाना,
तो तातों के सहित, सिगरे गोप हैं तारकों से ;
मेरा प्यारा कुँवर उसका एक ही चन्द्रमा है,
छा जावेगा तिमिर, वह जो दूर होगा दृगों से !"

"सच्चा प्यारा सकल ब्रज का, वंश का है उजाला,
दीनों का है परमधन, औ वृद्ध का नेत्र-तारा ;
बालाओं का प्रिय स्वजन, और बन्धु है बालकों का,
ले जाते हैं सु-रतन कहाँ, आप ऐसा हमारा ?"

बूढ़े के ये वचन सुनके नेत्र में नीर आया,
'आँसू रोके परम मृदुता साथ अक्रूर बोले—
'क्यों होते हैं दुखित इतने मानिये बात मेरी,
आ जावेंगे विवि दिवस में आपके लाल दोनों।"

आयी प्यारे निकट श्रम से एक वृद्धा-प्रवीणा,
हाथों से छू कमल-मुख को प्यार से लीं बलायें ;
पीछे बोली दुखित स्वर से, "तू कहीं जा न बेटा,
तेरी माता अहह, कितनी बावली हो रही है !"

"जो रूठेगा नृपति, ब्रज का वास ही छोड़ दूँगी,
ऊँचे-ऊँचे भवन तज के जंगलों में बसूँगी ;
खाऊँगी फूल-फल-दल को व्यंजनों को तजूँगी,
मैं आँखों से अलग न तुझे लाल मेरे करूँगी।"

"जाओगे क्या कुँवर मथुरा? कंस का क्या ठिकाना?
मेरा जी है बहुत डरता, क्या न जाने करेगा?
मानूंगी मैं न, सुरपति का राज ले क्या करूँगी।"
तेरा प्यारा बदन लख के, स्वर्ग को मैं तजूँगी।"

"जो लेवेगा नृपति मुझसे दंड दूँगी करोड़ों,
लोटा-थाली सहित तन के वस्त्र भी बेंच दूँगी ;
जो माँगेगा हृदय वह तो, काढ़ दूँगी उसे भी,
बेटा! तेरा गमन मथुरा, मैं न आँखों लखूँगी।"

"कोई भी है न सुन सकता, जा किसे मैं सुनाऊँ?
मैं हूँ, मेरा हृदय-तल है, और व्यथा हैं अनकों,
बेटा! तेरा सरल मुखड़ा शान्ति देता मुझे है,
क्यों जीऊँगी कुँवर! बतला जो चला जायगा तू?"

"प्यारे, तेरा गमन सुन के ; दूसरे रो रहे हैं,
मैं रोती हूँ, सकल ब्रज है वारि लाता दृगों में ;
सोचो बेटा! उस जननि की क्या दशा आज होगी?
तेरा जैसा सरल जिसका एक ही लाड़िला है।"

प्राचीना की स-दुख सुन के, बात सारी मुरारी,
दोनों आँखें सजल करके प्यार के साथ बोले—
"मैं आऊँगा कुछ दिन गये बाल होगा न बाँका,
क्यों माता तू, विकल इतना आज यों हो रही है?"

दौड़ा ग्वाला ब्रज-नृपति के सामने एक आया,
बोला, "गायें सकल वन को आपकी हैं न जातीं ;
दाँतो से हैं न तृण गहती हैं न बच्चे पिलातीं,
हा ! हा ! मेरी सुरभि, सबको आज क्या हो गया है।"

"देखो ! देखो ! सकल हरि की ओर ही आ रही हैं,
रोके भी है वह न रुकतीं, बावली हो गयी हैं,"
यों ही बातें सदुख कहते फूट के ग्वाल रोया,
बोला, "मेरे कुँवर सब को यों रुला के न जाओ।"

रोता ही था अहिर, तब लौं नन्द की सर्व गायें,
दौड़ी आयीं निकट हरि के पूँछ ऊँची उठाये
खिन्ना, दीना, विपुल, वह थीं, वारि था नेत्र लाता,
ऊँची आँखों कमल-मुख थीं देखतीं, शंकिता हो।

काकातूआ महर-गृह के द्वार का भी दुखी था,
भूला जाता सकल स्वर था, उन्मना हो रहा था,
चिल्लाता था, अति विकल था औ यही बोलता था,
"यों लोगों को व्यथित करके लाल जाते कहाँ हो ?"

पंछी की औ सुरभि सब की, देख ऐसी दशाएँ,
थोड़ी जो थी, अहह ! वह भी धीरता दूर भागी ;
हा हा ! शब्दों सहित इतना फूट के लोग रोये,
हो जाती थी निरख जिसको भग्न छाती शिला की।

आवेगों के सहित बढ़ते देख सन्ताप नाना,
धीरे-धीरे ब्रज-नृपति से खिन्न अक्रूर बोले—
"देखी जाती नहीं ब्रज-व्यथा, शोक है वृद्धि पाता,
आज्ञा दीजे, जननि पग छू, यान पै श्याम बैठें।"

—अयोध्या सिंह उपाध्याय "हरिऔध"

———

आश्रम में सीता

रघुकुल पुंगव ने पूरा गाना सुना।
धीर धुरंधर करुणा-वरुणालय बने ॥
इसी समय कर पूजित-पग क वन्दना।
खड़े दिखाई दिये प्रिय अनुज सामने ॥

कुछ आकुल कुछ तुष्ट कुछ अचिन्तित दशा।
देख सुमित्रा-सुत की प्रभुवर ने कहा ॥
"तात ! तुम्हें उत्फुल्ल नहीं हूँ देखता।
क्या मुझको अवलोक दृगों से जल बहा ?

आश्रम में तो सकुशल पहुँच गई प्रिया ?
वहाँ समादर स्वागत तो समुचित हुआ।
हैं मुनिराज प्रसन्न ? शान्त है तपोवन।
नहीं कहीं पर तो है कुछ अनुचित हुआ ?"

सविनय कहा सुमित्रा के प्रिय-सुअन ने।
"मुनि हैं मंगल-मूर्त्ति तपोवन पूततम ॥
आर्य्या हैं स्वयमेव दिव्य देवियों सी।
आश्रम है सात्विक-निवास सुरलोक सम ॥

वह है सद्व्यवहार-धाम सत्कृति-सदन।
वहाँ कुशल है 'कार्य-कुशलता' सीखती ॥
भले-भाव सब फूले फले मिले वहाँ।
भली-भावना-भूति भरी है दीखती ॥

किन्तु एक अति-पति-परायणा की दशा।
उनकी मुख-मुद्रा उनकी मार्मिक व्यथा ॥
उनकी गोपन-भाव-भरित दुख-व्यंजना।
उनकी बहु संयमन प्रयत्नों की कथा ॥

मुझे बनाती रहती है अब भी व्यथित।
उसकी याद सताती है अब भी मुझे॥
उन बातों को सोच न कब छलके नयन।
आश्वासन देतीं कह जिन्हें कभी मुझे॥

तपोभूमि का पूत वायुमण्डल मिले।
मुनि पुंगव के सात्विक पुण्य-प्रभाव से॥
शान्ति बहुत कुछ आर्य्या को है मिल रही।
तपस्विनी-गण सहृदयता सद्भाव से॥

किन्तु पति-परायणता की जो मूर्त्ति है।
पति ही जिसके जीवन का सर्वस्व है॥
बिना सलिल की सफरी वह होगी न क्यों।
पति-वियोग में जिसका विफल निजस्व है॥"

सिय-प्रदत्त-सन्देश सुना सौमित्र ने।
कहा "भरी है इनमें कितनी वेदना॥
बात आपकी चले न कब दिल हिल गया।
कब न पति रता आँखों से आँसू छना॥

उनको है कर्त्तव्य ज्ञान वे आपकी—
कर्म-परायण हैं सच्ची सहधर्मिणी॥
लोक-लाभ-मूलक प्रभु के संकल्प पर।
उत्सर्गी कृत होकर हैं कृति-ऋण-ऋणी॥

फिर भी प्रभु की स्मृति, दर्शन की लालसा।
उन्हें बनाती रहती है व्यथिता अधिक।
यह स्वाभाविकता है उस सद्भाव की।
जो आजन्म रहा सतीत्व-पथ का पथिक॥

जिसने अपनी वर-विभूति विभुता दिखा।
रज समान लंका के विभवों को गिना॥
जिसके उस कर से जो द्विव-बल-दीप्त था।
लंकाधिप का विश्व-विदित-गौरव छिना॥

कर प्रसून सा जिसने पावक-पुंज को।
दिखलाई अपनी अपूर्व तेजस्विता॥
दानवता आतपता जिसकी शान्ति से।
बहुत दिनों तक बनती रही शरद सिता॥

बड़े अपावन भाव परम पावन बने।
जिसकी पावनता का करके सामना॥
चौदह वत्सर तक जिसकी धृति-शक्ति से।
बहु दुर्गम बन अति सुन्दर उपवन बना॥

इष्ट-सिद्धि होगी उसका ही बल मिले!
सफल बनेगी कठिन से कठिन साधना॥
भव-हित होगा भय-विहीन होगी धरा।
होवेगी लोकोत्तर लोकाराधना॥

यह निश्चित है पर आर्य्या की वेदना।
जितनी है दुस्सह उसको कैसे कहूँ॥
वे हैं महिमामयी सहन कर लें व्यथा।
उन्हें व्यथा है, इसको मैं कैसे सहूँ॥

कुलपति आश्रम-गमन किसे प्रिय है नहीं।
इस मांगलिक-विधान से मुदित हैं सभी॥
पर न आज है राज-भवन ही श्री-रहित।
सूना है हो गया अवध सा नगर भी॥

मुनि-आश्रम के वास का अनिश्चित समय।
किसे बनाता है नितान्त चिन्तित नहीं॥
मातायें यदि व्यथित हैं वधुओं-सहित।
पौर-जनों का भी तो स्थिर है चित नहीं॥

मुझे देख सब के मुख पर यह प्रश्न था।
कब आयेंगी पुण्यमयी महि-नन्दिनी॥
अवध पुरी फिर कब होगी आलोकिता।
फिर कब दर्शन देंगी कलुष-निकन्दिनी॥

प्रायः आर्य्या जाती थीं प्रातः समय।
पावन-सलिला सरयू सरिता-तीर पर॥
और वहाँ थीं दान-पुण्य करती बहुत।
वारिद-सम वर-वारि-विभव की वृष्टि कर॥

समय समय पर देव-मन्दिरों में पहुँच।
होती थीं देवी समान वे पूजिता॥
सकल-न्यूनताओं की करके पूर्त्तियाँ।
सत्प्रवृत्ति को रहीं बनाती ऊर्जिता॥

वे निज प्रिय-रथ पर चढ़ कर संध्या-समय।
अटन के लिये जब थीं बाहर निकलती॥
तब खुलते कितने लोगों के भाग्य थे।
उन्नति में थी बहु-जन अवनति बदलती॥

राज-भवन से जब चलती थीं उस समय।
रहते उनके साथ विपुल-सामान थे॥
जिनसे मिलता आर्त्त-जनों को त्राण था।
बहुत अकिञ्चन बनते कञ्चनवान थे॥

दक्ष दासियाँ जितनी रहती साथ थीं।
वे जनता-हित-साधन की आधार थीं॥
मिले पंथ में किसी रुग्न विकलांग के।
करती उनके लिये उचित-उपचार थीं॥

इसी लिये उनके अभाव में आज दिन।
नहीं नगर में ही दुख की धारा बही॥
उदासीनता है कह रही उदास हो।
राज-भवन भी रहा न राज-भवन वही॥

आर्य्या की प्रिय-सेविका सुकृतिवती ने।
अभी गान जो गाया है उद्विग्न बन॥
अहह भरा है उसमें कितना करुण-रस।
वह है राज-भवन दुख का अविकल-कथन॥

गृहजन परिजन पुरजन की तो बात क्या।
रथ के घोड़े व्याकुल हैं अब तक बड़े॥
पहले तो आश्रम को रहे न छोड़ते।
चले चलाये तो पथ में प्रायः अड़े॥

घुमा घुमा शिर रहे रिक्त-रथ देखते।
थे निराश नयनों से आँसू ढालते॥
बार बार हिनहिना प्रकट करते व्यथा।
चौंक चौंक कर पाँव कभी थे डालते॥

आर्य्या कोमलता ममता की मूर्त्ति हैं।
हैं सद्भाव-रता उदारता पूरिता॥
हैं लोकाराधन-निधि-शुचिता-सुरसरी।
हैं मानवता-राका-रजनी की सिता॥

फिर कैसे होती न लोक में पूजिता।
क्यों न अदर्शन उनका जनता को खले ?
किन्तु हुई निर्विघ्न मांगलिक-क्रिया है।
हित होता है पहुँचे सुर पादप तले॥

—अयोध्या सिंह उपाध्याय "हरिऔध"

गीत

बीती विभावरी जाग री !
अम्बर-पनघट में डुबो रही—
तारा-घट ऊषा नागरी।
खग-कुल कुल-कुल सा बोल रहा,
किसलय का अंचल डोल रहा,
लो, यह लतिका भी भर लायी—
मधु मुकुल नवल रस-गागरी।
अधरों में राग अमन्द पिये,
अलकों में मलयज बन्द किये—
तू अब तक सोयी है आली !
आँखों में भरे विहाग री !

—जयशंकर प्रसाद

CENTRAL LIBRARY

लहर

कितने दिन जीवन जल-निधि में—
विकल अनिल से प्रेरित होकर,
लहरी, कूल चूमने चल कर,
उठती गिरती-सी रुक-रुक कर,
सृजन करेगी छवि गति-विधि में!

कितनी मधु-संगीत-निनादित,
गाथाएँ, निज ले चिर-संचित,
तरल तान, गावेगी वंचित!
पागल-सी इस पथ निरवधि में!

दिनकर, हिमकर, तारा के दल,
इसके मुकुर-वक्ष में निर्मल,
चित्र बनायेंगे निज चंचल!
आशा की माधुरी अवधि में।

—जयशंकर प्रसाद

वे कुछ दिन कितने सुंदर थे

वे कुछ दिन कितने सुंदर थे
जब सावन-घन-सघन बरसते—
इन आँखों की छाया भर थे!

सुर-धनु-रंजित नव-जलधर से
भरे, क्षितिज-व्यापी अम्बर से,
मिले चूमते जब सरिता के
हरित कूल युग मधुर अधर थे।

प्राण पपीहा के स्वर वाली,
बरस रही थी जब हरियाली,
रस-जलकन मालती-मुकुल से—
जो मदमाते गन्ध-विधुर थे।
चित्र खींचती थी जब चंपला,
नील मेघ-पट पर वह विरला,
मेरी जीवन-स्मृति के जिसमें—
खिल उठते वे रूप मधुर थे।

—जयशंकर प्रसाद

शिल्प-सौन्दर्य

कोलाहल क्यों मचा हुआ है? घोर यह
महाकाल का भैरव गर्जन हो रहा;
अथवा तोपों के मिस से हुंकार यह
करता हुआ पयोधि प्रलय का आ रहा।
नहीं; महा संघर्षण से हो कर व्यथित
हरि-चन्दन दावानल फैलाने लगा।
आर्य-मन्दिरों के सब ध्वंस बचे हुए
धूल उड़ाने लगे, पड़ी जो आँख में
उनके—जिनसे वे थे खुदवाये गये—
जिससे देख न सकते वे कर्त्तव्य-पथ।

दुर्दिन जल-धारा न सम्हाल सकी अहो!
बालू की दीवाल मुगल साम्राज्य की।
आर्य-शिल्प के साथ गिरा वह भी जिसे
अपने कर से खोदा आलमगीर ने;
मुगल महीपति के अत्याचारी, अबल
कर कँपने से लगे; अहो! यह क्या हुआ?

मुगल अदृष्टाकाश-मध्य, अति तेज से,
धूमकेतु-से सूर्यमल्ल प्रमुदित हुए ;
सिंह-द्वार है खुला दीन के मुख सदृश ;
प्रतिहिंसा-पूरित वीरों की मंडली
व्याप्त हो रही है दिल्ली के दुर्ग में ;
मुगल महीपों के आवासादिक बहुत
टूट चुके हैं, आम खास के अंश भी,
किन्तु न कोई सैनिक भी सम्मुख हुआ।

रोषानल से ज्वलित नेत्र भी लाल हैं,
मुख-मंडल भीषण प्रतिहिंसा-पूर्ण है।

सूर्यमल्ल, मध्याह्न सूर्य सम चंड हो,
मोती मस्जिद के प्रांगण में हैं खड़े ;
भीम गदा है कर में, मन में वेग है ;
उठा क्रुद्ध हो, सबल हाथ ले कर गदा,
छज्जे पर जा पड़ा, काँप कर रह गयी,
मर्मर की दीवाल, अलग टुकड़ा हुआ ;
किन्तु न फिर वह चला चंड कर नाश को।
क्यों जी, यह कैसा निष्क्रिय प्रतिरोध है ?

सूर्यमल्ल रुक गये ; हृदय भी रुक गया ;
भीषणता रुक कर करुणा-सी हो गयी।

कहा—नष्ट कर देंगे यदि विद्वेष से—
इसको, तो फिर एक वस्तु संसार की,
सुन्दरता से पूर्ण सदा के लिए ही
हो जायेगी लुप्त , बड़ा आश्चर्य है !
आज काम वह किया शिल्प-सौन्दर्य ने,
जिसे न करती कभी सहस्रों वक्तृता।

अति सर्वत्र अहो, वर्जित है, सत्य ही,
कहीं वीरता बनती इससे क्रूरता।
धर्म-जन्य प्रतिहिंसा ने क्या-क्या नहीं
किया, विशेष अनिष्ट शिल्प-साहित्य का?
लुप्त हो गये कितने ही विज्ञान के
साधन, सुन्दर ग्रन्थ जलाये वे गये;
तोड़े गये अतीत-कथा-मकरन्द को
रहे छिपाये शिल्प-कुसुम जो शिला हो;
हे भारत के ध्वंस-शिल्प! स्मृति से भरे,
कितनी वर्षा शीतातप तुम सह चुके!
तुमको देख करुण इस वेश में,
कौन कहेगा, कब किसने निर्मित किया?
शिल्पपूर्ण पत्थर कब मिट्टी हो गये?
किस मिट्टी की ईंटें हैं बिखरी हुई?

—जयशंकर प्रसाद

खोलो द्वार

शिशिर-कणों से लदी हुई, कमली के भींगे हैं सब तार,
चलता है पश्चिम का मारुत, लेकर शीतलता का भार;
भींग रहा है रजनी का वह, सुन्दर कोमल कवरी-भार,
अरुण किरण सम कर से छू लो, खोलो प्रियतम खोलो द्वार।
धूल लगी है पद काँटों से बिधा हुआ, है दुःख अपार;
किसी तरह से भूला-भटका आ पहुँचा हूँ तेरे द्वार;
डरो न इतना, धूल धूसरित होगा नहीं तुम्हारा द्वार;
धो डाले हैं इनको प्रियवर, इन आँखों से आँसू ढार।

मेरे धूलि लगे पैरों से, इतना करो न घृणा-प्रकाश,
मेरे ऐसे धूल-कणों से कब, तेरे पद को अवकाश ?
पैरों ही से लिपटा-लिपटा कर लूँगा निज पद निर्धार ;
अब तो छोड़ नहीं सकता हूँ पाकर प्राप्य तुम्हारा द्वार।
सु-प्रभात मेरा भी होवे, इस रजनी का दुःख अपार—
मिट जावे जो तुमको देखूँ, खोलो प्रियतम ! खोलो द्वार।

—जयशंकर प्रसाद

तुम कनक किरण के अंतराल में

तुम कनक किरण के अन्तराल में
लुक-छिप कर चलते हो क्यों ?
नत मस्तक गर्व वहन करते
यौवन के घन, रस कन ढरते ?
हे लाज-भरे सौंदर्य !
बता दो मौन बने रहते हो क्यों ?
अधरों के मधुर कगारों में
कल-कल ध्वनि की गुञ्जारों में
मधुसरिता-सी वह हँसी,
तरल अपनी पीते रहते हो क्यों ?
बेला विभ्रम की बीत चली
रजनीगंधा की कली खिली—
अब सान्ध्य मलय-आकुलित
दुकूल कलित हो, यों छिपते हो क्यों ?

—जयशंकर प्रसाद

निकल मत दुर्बल आह!

निकल मत बाहर दुर्बल आह!
लगेगा तुझे हँसी का शीत
शरद नीरद माला के बीच
तड़प ले चपला-सी भयभीत

पड़ रहे पावन प्रेम-फुहार
जलन कुछ-कुछ है मीठी पीर
सम्हाले चल कितनी है दूर
प्रलय तक व्याकुल हो न अधीर

अश्रुमय सुंदर विरह निशीथ
भरे तारे न ढुलकती आह!
न उफना दे आँसू हैं भरे
इन्हीं आँखों में उनकी चाह

काकली-सी बनने की तुम्हें
लगन लग जाय न हे भगवान्
पपीहा का पी सुनता कभी!
अरे कोकिल की देख दशा न;

हृदय है पास, साँस की राह
चले आना-जाना चुपचाप
अरे छाया बन, छू मत उसे
भरा है तुझमें भीषण ताप

हिला कर धड़कन से अविनीत
जगा मत, सोया है सुकुमार
देखता है स्मृतियों का स्वप्न,
हृदय पर मत कर अत्याचार।

—जयशंकर प्रसाद

———

अरुण यह मधुमय देश हमारा

अरुण, यह मधुमय देश हमारा।
जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।
सरस तामरस गर्भ विभा पर—नाच रही तरुशिखा मनोहर।
छिटका जीवन हरियाली पर—मङ्गल कुंकुम सारा।
लघु सुरधनु से पंख पसारे—शीतल मलय समीर सहारे।
उड़ते खग जिस ओर मुँह किये—समझ नीड़ निज प्यारा।
बरसाती आँखों के बादल—बनते जहाँ भरे करुणा जल।
लहरें टकरातीं अनन्त की—पाकर जहाँ किनारा।
हेम कुम्भ ले उषा सवेरे—भरती ढुलकाती सुख मेरे।
मदिर ऊंघते रहते जब—जग कर रजनीभर तारा।

—जयशंकर प्रसाद

भारत-महिमा

हिमालय के आँगन में उसे प्रथम किरणों का दे उपहार।
उषा ने हँस अभिनंदन किया और पहनाया हीरक हार।
जगे हम, लगे जगाने विश्व लोक में फैला फिर आलोक।
व्योम-तम-पुञ्ज हुआ तब नष्ट, अखिल संसृति हो उठी अशोक।
विमल वाणी ने वीणा ली कमल-कोमल कर में सप्रीत।
सप्तस्वर सप्तसिंधु में उठे, छिड़ा तब मधुर साम संगीत।
बचा कर बीज-रूप से सृष्टि, नाव पर झेल प्रलय का शीत।
अरुण-केतन लेकर निज हाथ वरुण पथ में हम बढ़े अभीत।
सुना है दधीचि का वह त्याग हमारी जातीयता विकास।
पुरन्दर ने पवि से है लिखा अस्थि-युग का मेरे इतिहास।
सिंधु-सा विस्तृत और अथाह एक निर्वासित का उत्साह।
दे रही अभी दिखाई भग्न मग्न रत्नाकर में वह राह।

धर्म का ले लेकर जो नाम हुआ करती बलि, कर दी बंद।
हमीं ने दिया शांति-संदेश, सुखी होते देकर आनन्द।
विजय केवल लोहे की नहीं, धर्म की रही धरा पर धूम।
भिक्षु होकर रहते सम्राट् दया दिखलाते घर-घर घूम।
यवन को दिया दया का दान चीन को मिली धर्म की दृष्टि।
मिला था स्वर्ण-भूमि को रत्न शील की सिंहल को भी सृष्टि।
किसी का हमने छीना नहीं, प्रकृति का रहा पालना यहीं।
हमारी जन्मभूमि थी यही, कहीं से हम आये थे नहीं।
जातियों का उत्थान-पतन, आँधियाँ, झड़ी, प्रचंड समीर।
खड़े देखा झेला हँसते, प्रलय में पले हुए हम वीर।
चरित के पूत, भुजा में शक्ति, नम्रता रही सदा सम्पन्न।
हृदय के गौरव में था गर्व, किसी को देख न सके विपन्न।
हमारे सञ्चय में था दान, अतिथि थे सदा हमारे देव।
वचन में सत्य, हृदय में तेज, प्रतिज्ञा में रहती थी टेव।
वही है रक्त, वही है देश, वही साहस है, वैसा ज्ञान।
वही है शांति, वही है शक्ति, वही हम दिव्य आर्य्य-संतान।
जियें तो सदा उसी के लिये यही अभिमान रहे, यह हर्ष।
निछावर कर दें हम सर्वस्व, हमारा प्यारा भारतवर्ष।

—जयशंकर प्रसाद

———

देवसेना

आह! वेदना मिली विदाई!
मैंने भ्रम-वश जीवन सञ्चित,
मधुकरियों की भीख लुटाई।

छलछल थे संध्या के श्रमकण।
आँसू-से गिरते थे प्रतिक्षण।
मेरी यात्रा पर लेती थी—
नीरवता अनन्त अँगड़ाई।

श्रमित स्वप्न की मधुमाया में,
गहन-विपिन की तरु छाया में,
पथिक उनींदी श्रुति में किसने—
यह विहाग की तान उठाई।

लगी सतृष्ण दीठ थी सबकी,
रही बचाये फिरती कबकी
मेरी आशा आह! बावली
तूने खो दी सकल कमाई।

चढ़कर मेरे जीवन-रथ पर,
प्रलय चल रहा अपने पथ पर।
मैंने निज दुर्बल पद-बल पर,
उससे हारी-होड़ लगाई।

लौटा लो यह अपनी थाती,
मेरी करुणा हा-हा खाती!
विश्व! न सँभलेगी यह मुझसे,
इससे मन की लाज गँवाई!

—जयशंकर प्रसाद

आँसू

इस करुणा कलित हृदय में
अब विकल रागिनी बजती
क्यों हाहाकार स्वरों में
वेदना असीम गरजती?

मानस-सागर के तट पर
क्यों लोल लहर की घातें
कल-कल ध्वनि से हैं कहतीं
कुछ विस्मृत बीती बातें ?

आती है शून्य क्षितिज से
क्यों लौट प्रतिध्वनि मेरी
टकराती बिलखाती सी
पगली सी देती फेरी ?

क्यों व्यथित व्योम-गंगा सी
छिटका कर दोनों छोरें
चेतना-तरङ्गिनि मेरी
लेती है मृदुल हिलोरें

बस गई एक बस्ती है
स्मृतियों की इसी हृदय में
नक्षत्र-लोक फैला है
जैसे इस नील निलय में।

ये सब स्फुलिङ्ग हैं मेरी
इस ज्वालामयी जलन के
कुछ शेष चिह्न हैं केवल
मेरे उस महा मिलन के।

शीतल ज्वाला जलती है,
ईंधन होता दृग-जल का
यह व्यर्थ साँस चल-चल कर
करती है काम अनिल का।

वाडवज्वाला सोती थी
इस प्रणय-सिंधु के तल में
प्यासी मछली-सी आँखें
थीं विकल रूप के जल में।

बुलबुले सिन्धु के फूटे
नक्षत्र-मालिका टूटी
नभ-मुक्त-कुन्तला धरणी
दिखलाई देती लूटी।

छिल-छिल कर छाले फोड़े
मल-मल कर मृदुल चरण से
धुल-धुल कर वह रह जाते
आँसू करुणा के कण से।

इस विकल वेदना को ले
किसने सुख को ललकारा
वह एक अबोध अकिञ्चन
बेसुध चैतन्य हमारा।

अभिलाषाओं की करवट
फिर सुप्त व्यथा का जगना
सुख का सपना हो जाना
भींगी पलकों का लगना।

इस हृदय-कमल का घिरना
अलि-अलकों की उलझन में
आँसू-मरन्द का गिरना
मिलना निश्वास-पवन में।

CENTRAL LIBRARY

मादक थी मोहमयी थी
मन बहलाने की क्रीड़ा
अब हृदय हिला देती है
वह मधुर प्रेम की पीड़ा।

सुख आहत शान्त उमंगें
बेगार साँस ढोने में
यह हृदय समाधि बना है
रोती करुणा कोने में।

चातक की चकित पुकारें
श्यामा ध्वनि सरल रसीली
मेरी करुणार्द्र-कथा की
टुकड़ी आँसू से गीली।

बेसुध जो अपने सुख से
जिनकी हैं सुप्त व्यथायें
अवकाश भला है किनको
सुनने को करुण कथायें।

जीवन की जटिल समस्या
है बढ़ी जटा सी कैसी
उड़ती है धूल हृदय में
किसकी विभूति है ऐसी?

जो घनीभूत पीड़ा थी
मस्तक में स्मृति सी छाई
दुर्दिन में आँसू बनकर
वह आज बरसने आई।

—जयशंकर प्रसाद

CENTRAL LIBRARY

प्रीति समर्पण

ऊषा आज लजाई !
ओसों के रेशमी जलद से
अधर-रेख मुसकाई !
कलियों के वक्षों में कोमल
डुबा रहा मुख मारुत विह्वल,
प्राणों में सहसा उन्मादन
सौरभ रहस समाई !

तुहिन अश्रु स्मित, अपलक लोचन
करते नीरव प्रणय निवेदन
मधुकर ने गुंजित पंखों में
स्वर्णिम रज लिपटाई !

कँपता छायातप का भूतल,
कँपता द्रवित हृदय सरिता जल,
सरसी के अंतर में कँपती
ज्वाला-सी लहराई !

यह स्वप्नों की बेला मोहन
देती गोपन मौन निमंत्रण,
निभृत विरह की सी पवित्रता
नव विभात में छाई !

यह कामना रहित रहस्य-क्षण,
केवल निश्छल आत्म समर्पण,
तुम्हें हृदय मंदिर में पाकर
प्रीति मधुर सकुचाई !

—सुमित्रानंदन पंत

CENTRAL LIBRARY

शरदश्री

सौम्य शरद श्री का यह आंगन
जीवन आतप लगता कोमल
हरियाली के अंचल में बँध
धरती का तम जलता शीतल !

निखर उठा प्राणों का यौवन
फूल मांस के खिले चपल अंग,
नीले पीले लाल पाटली
हँसते आकांक्षाओं के रंग !

मिट्टी की सोंधी सुगंध से
मिली सूक्ष्म सुमनों की सौरभ,
रूप स्पर्श रस शब्द गंध की
हरित धरा पर झुका नील नभ !

क्या समीर ने लिपट, विटप को
किया पल्लवों में रोमांचित ?
अंगराई ले बांह खोलना
सिखलाया डालों को कंपित !

क्या किरणों ने चूम, खिलाए
रंग भरे फूलों के आनन ?
सृजन प्राण रे स्पर्श प्रेम का
सच है, जीवन करता धारण !

मूल भूत-कामना एक ज्यों
पत्रों में कँप उठती मर्मर,
प्रिय निसर्ग ने अपने जग में
खोल दिया फिर मेरा अंतर !

एक शांति सी, पावनता सी
विचर रही धरती पर निःस्वर,
छायातप में, तृण-अंचल में,
ज्वलि वसन, कुसुमों के तन पर!

रंग प्राण रे प्रकृति लोक यह
यहां नहीं दुख दैन्य अमंगल,
यहां खुला चिर शोभा का उर,
यहां कामना का मुख उज्ज्वल!

—सुमित्रानंदन पंत

ममता

अब शरद मेघ सा मेरा मन
हो गया अश्रु झर से निर्मल,
तुम कँपती दामिनि सी भीतर,
शोभातप में लुक-छिप प्रतिपल!

विद्युत् दीपित करती घन को
वह नहीं ज्वाल में उठता जल,
वह उसके अंतर की आभा
तुम मेरी हृदय शिखा उज्ज्वल!

CENTRAL LIBRARY

यह प्रीति द्रवित हलका बादल
मेरे ममत्व की छाया-भर,
तुम तड़िल्लता सी खिल पड़ती
जिसमें जीवन की सत्य अमर!

इस विरल जलद पट से छन कर
तुम बरसाती ऐश्वर्य ज्वार,
छाया प्रकाश के पटल खोल
भावों की गहराई निखार!

तुम विद्युत् प्रभ कर पलक पात
करतीं मिथ नीरव संभाषण,
वाष्पों के आवृत मानस में
अंकित कर भेद रहस गोपन!

यह मौन मंद्र गर्जन भरता
युग युग की प्रिय स्मृतियां जगतीं,
शोभा की, स्वप्नों की, रति की,
आशा अभिलाषाएं कँपतीं!

चांदनी चार दिन रहती है,
तुम क्षण भर में होती ओझल,
तुम मुझे चांदनी से प्रिय हो
चपले, मैं ममता का बादल!

—सुमित्रानंदन पंत

———

CENTRAL LIBRARY

एक तारा

नीरव सन्ध्या में प्रशान्त
डूबा है सारा ग्राम-प्रान्त ;
पत्रों के आनत अधरों पर, सो गया निखिल वन का मर्मर'
ज्यों वीणा के तारों में स्वर ;
खग-कूजन भी हो रहा लीन, निर्जन गो-पथ अब धूलि-हीन ;
धूसर भुजंग-सा जिह्म, क्षीण।
झींगुर के स्वर का प्रखर तीर, केवल प्रशान्ति को रहा चीर,
सन्ध्या-प्रशान्ति को कर गँभीर ;
इस महाशान्ति का उर उदार, चिर आकांक्षा की तीक्ष्ण धार,
ज्यों बेध रही हो आर-पार।

अब हुआ सान्ध्य-स्वर्णाभलीन,
सब वर्ण वस्तु से विश्व हीन ;
गंगा के चल जल में निर्मल, कुम्हला किरणों का रक्तोत्पल,
है मूँद चुका अपने मृदु दल ;
लहरों पर स्वर्ण-रेख सुन्दर, पड़ गयी नील, ज्यों अधरों पर,
अरुणाई प्रखर शिशिर से डर ;
तरु-शिखरों से वह स्वर्ण-विहग, उड़ गया, खोल निज पंख सुभग,
किस गुहा-नीड़ में रे किस मग ?
मृदु-मृदु स्वप्नों से भर अंचल, नव नील नील, कोमल-कोमल,
छाया तरु-वन में तम श्यामल।

पश्चिम नभ में हूँ रहा देख
उज्ज्वल, अमन्द नक्षत्र एक—
अकलुष, अनिन्द्य नक्षत्र एक, ज्यों मूर्तिमान ज्योतित विवेक,
उर में हो दीपित अमर टेक ;
किस स्वर्णाकांक्षा का प्रदीप, वह लिये हुए, किसके समीप ?
मुक्तालोकित ज्यों रजत-सीप !

क्या उसकी आत्मा का चिर-धन, स्थिर, अपलक-नयनों का चिन्तन
क्या खोज रहा वह अपनापन ?
दुर्लभ रे, दुर्लभ अपनापन, लगता यह निखिल विश्व निर्जन,
वह निष्फल-इच्छा से निर्धन।

आकांक्षा का उच्छ्वसित वेग
मानता नहीं बन्धन-विवेक ।
चिर आकांक्षा से ही थर्-थर्, उद्वेलित रे, अहरह सागर,
नाचती लहर पर हहर लहर ;
अविरत-इच्छा में ही नर्तन, करते अबाध रवि, शशि, उड्गण,
दुस्तर आकांक्षा का बन्धन ;
रे उडु, क्या जलते प्राण विकल ? क्या नीरव नीरव नयन सजल ?
जीवन निसंग रे व्यर्थ-विफल !
एकाकीपन का अन्धकार, दुस्सह है इसका मूक-भार,
इसके विषाद का रे, न पार !

चिर अविचल पर तारक अमन्द!
जानता नहीं वह छन्द-बन्ध ;
वह रे ! अनन्त का मुक्त-मीन, अपने असंग-सुख में विलीन,
स्थित निज स्वरूप में चिर नवीन ;
निष्कम्प शिखा सा वह निरुपम, भेदता जगत-जीवन का तम,
वह शुद्ध, प्रबुद्ध, शुक्र, वह सम !

... ...

गुंजित अलि-सा निर्जन अपार, मधुमय लगता घन-अन्धकार,
हलका एकाकी व्यथा-भार !
जगमग-जगमग नभ का आँगन, लद गया कुन्द कलियों से घन,
वह आत्म और यह जग-दर्शन।

—सुमित्रानंदन पंत

———

9—1814 B.T.

CENTRAL LIBRARY

संध्या

कौन, तुम रूपसि कौन !
व्योम से उतर रही चुपचाप
छिपी निज छाया छवि में आप,
सुनहला फैला केश कलाप,—
मधुर, मंथर, मृदु, मौन !

मूँद अधरों में मधुपालाप,
पलक में निमिष, पदों में चाप,
भाव संकुल, बंकिम, भ्रू-चाप,
मौन केवल तुम मौन !

ग्रीव तिर्यक्, चम्पक द्युति गात,
नयन मुकुलित, नत मुख जलजात,
देह छवि छाया में दिन रात,
कहाँ रहतीं तुम कौन !

अनिल पुलकित स्वर्णांचल लोल ;
मधुर नूपुर ध्वनि खग कुल रोल,
सीप-से जलदों के पर खोल,
उड़ रहीं नभ में मौन !

लाज से अरुण अरुण सुकपोल,
मदिर अधरों की सुरा अमोल,—
बने पावस घन स्वर्ण हिंदोल,
कहो, एकाकिनि, कौन ?
मधुर मंथर तुम मौन !

—सुमित्रानंदन पंत

———

CENTRAL LIBRARY

छाया

कौन, कौन तुम परिहत वसना,
म्लान मना, भू पतिता सी,
वात हता विच्छिन्न लता सी,
रति श्रांता व्रज वनिता सी?
नियति वंचिता, आश्रय रहिता,
जर्जरिता, पद दलिता सी,
धूलि धूसरित मुक्त कुंतला,
किसके चरणों की दासी?

कहो, कौन हो दमयंती सी
तुम द्रुम के नीचे सोई?
हाय! तुम्हें भी त्याग गया क्या
अलि! नल सा निष्ठुर कोई?
पीले पत्रों की शय्या पर
तुम विरक्ति सी, मूर्छा सी,
विजन विपिन में कौन पड़ी हो
विरह मलिन, दुख विधुरा सी?

गूढ़ कल्पना सी कवियों की,
अज्ञाता के विस्मय सी,
ऋषियों के गंभीर हृदय सी,
बच्चों के तुतले भय सी;
आशा के नव इंद्रजाल सी,
सजनि! नियति सी अंतर्धान,
कहो कौन तुम तरु के नीचे
भावी सी हो छिपी अजान?

चिर अतीत की विस्मृत स्मृति सी,
नीरवता की सी झंकार,
आँखमिचौनी सी असीम की,
निर्जनता की सी उद्गार;
किस रहस्यमय अभिनय की तुम
सजनि! यवनिका हो सुकुमार,
इस अभेद्य पट के भीतर है
किस विचित्रता का संसार?

निर्जनता के मानस पट पर
--बार बार भर ठंढी साँस--
क्या तुम छिप कर क्रूर काल का
लिखती हो अकरुण इतिहास?
सखि! भिखारिणी सी तुम पथ पर
फैला कर अपना अंचल,
सूखे पातों ही को पा क्या
प्रमुदित रहती हो प्रतिपल?

पत्रों के अस्फुट अधरों से
संचित कर सुख दुख के गान,
सुला चुकी हो क्या तुम अपनी
इच्छाएँ सब अल्प, महान?
कभी लोभ सी लंबी होकर,
कभी तृप्ति सी होकर पीन,
तुम संसृति की अचिर भूति या
सजनि, नापती हो स्थिति-हीन।

कालानिल की कुञ्चित गति से
बार बार कंपित होकर,
निज जीवन के मलिन पृष्ठ पर
नीरव शब्दों में निर्भर
किस अतीत का करुण चित्र तुम
खींच रही हो कोमलतर,
भग्न भावना, विजन वेदना
विफल लालसाओं से भर?

ऐ अवाक् निर्जन की भारति!
कंपित अधरों से अनजान
मर्म मधुर किस सुर में गाती
तुम अरण्य के चिर आख्यान?
ऐ अस्पृश्य, अदृश्य अप्सरि!
यह छाया तन, छाया लोक,
मुझको भी दे दो मायाविनि!
उर की आँखों का आलोक!

थके चरण चिह्नों को अपनी
नीरव उत्सुकता से भर,
दिखा रही हो क्या तुम जग को
पर सेवा का मार्ग अमर?
श्रमित तपित अवलोक पथिक को
रहती या यों दीन, मलीन?
ऐ विटपी की व्याकुल प्रेयसि!
विश्व वेदना में तल्लीन।

दिनकर कुल में दिव्य जन्म पा,
बढ़ कर नित तरुवर के संग
मुरझे पत्रों की साड़ी से
ढँक कर अपने कोमल अंग;
सदुपदेश सुमनों से तरु के
गूँथ हृदय का सुरभित हार,
पर सेवा रत रहती हो तुम,
हरती नित पथ श्रांति अपार।

हे सखि! इस पावन अंचल से
मुझको भी निज मुख ढँक कर
अपनी विस्मृत सुखद गोद में
सोने दो सुख से क्षण भर!
चूर्ण शिथिलता सी अँगड़ा कर
होने दो अपने में लीन,
पर पीड़ा से पीड़ित होना
मुझे सिखा दो, कर मद हीन।

गाओ गाओ, विहग बालिके!
तरुवर से मृदु मंगल गान,
मैं छाया में बैठ तुम्हारे
कोमल स्वर में कर लूँ स्नान।
—हाँ, सखि, आओ, बाँह खोल हम
लग कर गले जुड़ालें प्राण?
फिर तुम तम में, मैं प्रियतम में
हो जावें द्रुत अंतर्धान।

—सुमित्रानंदन पंत

———

CENTRAL LIBRARY

जिज्ञासा

शांत सरोवर का उर
किस इच्छा से लहरा कर
हो उठता चंचल, चंचल?

सोए वीणा के सुर
क्यों मधुर स्पर्श से मर् मर्
बज उठते प्रतिपल, प्रतिपल!

आशा के लघु अंकुर
किस सुख से फड़का कर पर
फैलाते नव दल पर दल!

मानव का मन निष्ठुर
सहसा आँसू में झर झर
क्यों जाता पिघल पिघल गल?

मैं चिर उत्कंठातुर
जगती के अखिल चराचर
यों मौन-मुग्ध किसके बल!

—सुमित्रानंदन पंत

———

CENTRAL LIBRARY

चाँदनी

नीले नभ के शतदल पर
वह बैठी शारद हासिनि,
मृदु करतल पर शशि मुख धर,
नीरव, अनिमिष, एकाकिनि !

वह स्वप्न जड़ित नत चितवन
छू लेती अग जग का मन
श्यामल, कोमल, चल चितवन
लहरा देती जग जीवन !

वह बेला की फूली बन
जिसमें न नाल, दल, कुड्मल ;
केवल विकास चिर निर्मल
जिसमें डूबे दश दिशि दल।

वह सोई सरित पुलिन पर
साँसों में स्तब्ध समीरण,
केवल लघु लघु लहरों पर
मिलता मृदु मृदु उर स्पंदन।

अपनी छाया में छिप कर
वह खड़ी शिखर पर सुंदर,
लो नाच रहीं शत शत छवि
सागर की लहर लहर पर।

दिन की आभा दुलहिन बन
आई निशि निभृत शयन पर,
वह छवि की छुईमुई सी
मृदु मधुर लाज से मर मर।

CENTRAL LIBRARY

जग के अस्फुट स्वप्नों का
वह हार गूँथती प्रतिपल ;
चिर सजल सजल, करुणा से
उसके ओसों का अंचल।

वह मृदु मुकुलों के मुख में
भरती मोती के चुंबन,
लहरों के चल करतल में
चाँदी के चंचल उड़ुगण।

वह परिमल के लघु घन सी
जो लीन अनिल में अविकल,
सुख के उमड़े सागर सी
जिसमें निमग्न तट के स्थल।

वह स्वप्निल शयन मुकुल सी
हैं मुँदे दिवस के द्युति दल,
उर में सोया जग का अलि,
नीरव जीवन गुंजन कल।

वह एक बूँद जीवन की
नभ के विशाल करतल पर ;
डूबे असीम सुखमा में
सब ओर छोर के अंतर।

वह शशि किरणों से उतरी
चुपके मेरे आँगन पर,
उर की आभा में खोई,
अपनी ही छवि से सुंदर !

वह खड़ी दृगों के सम्मुख
सब रूप, रेख, रँग ओझल ;
अनुभूति-मात्र-सी उर में,
आभास शांत, शुचि, उज्ज्वल !

वह है, वह नहीं, अनिर्वच,
जग उसमें, वह जग में लय ;
साकार चेतना सी वह,
जिसमें अचेत जीवाशय !

—सुमित्रानंदन पंत

———

पहिचान

किसी नक्षत्रलोक से टूट
विश्व के शतदल पर अज्ञात,
ढुलक जो पड़ी ओस की बूँद
तरल मोती सा ले मृदु गात,

नाम से जीवन से अनजान,
कहो क्या परिचय दे नादान !

किसी निर्मम कर का आघात
छेड़ता जब वीणा के तार,
अनिल के चल पंखों के साथ
दूर जो उड़ जाती झङ्कार,

जन्म ही उसे विरह की रात,
सुनावे क्या वह मिलन-प्रभात!

चाह शैशव सा परिचयहीन
पलक-दोलों में पलभर झूल,
कपोलों पर जो ढुल चुपचाप
गया कुम्हला आँखों का फूल,

एक ही आदि अंत की सांस—
कहे वह क्या पिछला इतिहास!

मूक हो जाता वारिद-घोष
जगा कर जब सारा संसार,
गूँजती, टकराती असहाय
धरा से जो प्रतिध्वनि सुकुमार,

देश का जिसे न निज का मान,
बतावे क्या अपनी पहिचान!

सिन्धु को क्या परिचय दें देव!
बिगड़ते बनते वीचि-विलास;
क्षुद्र हैं मेरे बुद्बुद् प्राण
तुम्हीं में सृष्टि तुम्हीं में नाश!

मुझे क्यों देते हो अभिराम!
थाह पाने का दुस्तर काम?

जन्म ही जिसको हुआ वियोग
तुम्हारा ही तो हूँ उच्छ्वास;
चुरा लाया जो विश्व-समीर
वही पीड़ा की पहली सांस!

छोड़ क्यों देते बारम्बार,
मुझे तम से करने अभिसार ?

छिपा है जननी का अस्तित्व
रुदन में शिशु के अर्थविहीन ;
मिलेगा चित्रकार का ज्ञान
चित्र की ही जड़ता में लीन ;

दृगों में छिपा अश्रु का हार,
सुभग है तेरा ही उपहार !

--महादेवी वर्मा

वे दिन

नव मेघों को रोता था जब चातक का बालक मन,
इन आंखों में करुणा के घिर घिर आते थे सावन !
किरणों को देख चुराते चित्रित पंखों की माया,
पलकें आकुल होती थीं तितली पर करने छाया !
जब अपनी निश्वासों से तारे पिघलातीं रातें,
गिन गिन धरता था यह मन उनके आंसू की पांतें।
जो नव लज्जा जाती भर नभ में कलियों में लाली,
वह मृदु पुलकों से मेरी छलकाती जीवन-प्याली।
घिर कर अविरल मेघों से जब नभमण्डल झुक जाता,
अज्ञात वेदनाओं से मेरा मानस भर आता।

गर्जन के द्रुत तालों पर चपला का बेसुध नर्तन ;
मेरे मनबालशिखी में संगीत मधुर जाता बन।
किस भांति कहूं कैसे थे वे जग से परिचय के दिन !
मिश्री सा घुल जाता था मन छूते ही आंसू-कन।
अपनेपन की छाया तब देखी न मुकुरमानस ने ;
उसमें प्रतिबिम्बित सबके सुख दुख लगते थे अपने।
तब सीमाहीनों से था मेरी लघुता का परिचय ;
होता रहता था प्रतिपल स्मित का आंसू का विनिमय
परिवर्तन-पथ में दोनों शिशु से करते थे क्रीड़ा ;
मन मांग रहा था विस्मय जग मांग रहा था पीड़ा !
यह दोनों दो ओरें थीं संसृति की चित्रपटी की ;
उस बिन मेरा दुख सूना मुझ बिन वह सुषमा फीकी।
किसने अनजाने आकर वह लिया चुरा भोलापन ?
उस विस्मृति के सपने से चौंकाया छूकर जीवन।
जाती नवजीवन बरसा जो करुणघटा कण कण में,
निस्पन्द पड़ी सोती वह अब मन के लघु बन्धन में !
स्मित बनकर नाच रहा है अपना लघु सुख अधरों पर ;
अभिनय करता पलकों में अपना दुख आंसू बनकर।
अपनी लघु निश्वासों में अपनी साधों की कम्पन ;
अपने सीमित मानस में अपने सपनों का स्पन्दन !
मेरा अपार वैभव ही मुझसे है आज अपरिचित ;
हो गया उदधि जीवन का सिकता-कण में निर्वासित !
स्मित ले प्रभात आता नित दीपक दे सन्ध्या जाती :
दिन ढलता सोना बरसा निशि मोती दे मुस्काती।
अस्फुट मर्मर में, अपनी गति की कलकल उलझाकर,
मेरे अनन्तपथ में नित संगीत बिछाते निर्झर।
यह सांसें गिनते गिनते नभ की पलकें झप जातीं ;
मेरे विरक्तिअञ्चल में सौरभ समीर भर जातीं।

मुख जोह रहे हैं मेरा पथ में कब से चिर सहचर !
मन रोया ही करता क्यों अपने एकाकीपन पर ?
अपनी कण कण में बिखरीं निधियां न कभी पहिचानीं ;
मेरा लघु अपनापन है लघुता की अकथ कहानी।
मैं दिन को ढूंढ़ रही हूं जुगनू की उजियाली में ;
मन मांग रहा है मेरा सिकता हीरक-प्याली में !

—महादेवी वर्मा

गीत

प्रथम

आज क्यों तेरी वीणा मौन ?
शिथिल, शिथिल तन, थकित हुए कर
स्पन्दन भी भूला जाता उर ;
मधुर कसक सा आज हृदय में
आन समाया कौन ?
आज क्यों तेरी वीणा मौन ?

झुकती आतीं पलकें निश्चल,
चित्रित, निद्रित-से तारक चल,
सोता पारावार दृगों में
भर-भर लाया कौन ?
आज क्यों तेरी वीणा मौन ?

CENTRAL LIBRARY

बाहर घन-तम, भीतर दुख-तम,
नभ में विद्युत्, तुझ में प्रियतम;
जीवन पावस-रात बनाने
सुधि बन छाया कौन?
आज क्यों तेरी वीणा मौन?

द्वितीय

बीन भी हूँ, मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ!
नींद थी मेरी अचल निस्पन्द कण-कण में,
प्रथम जागृति थी जगत के प्रथम स्पन्दन में,
प्रलय में मेरा पता, पद-चिह्न जीवन में,
शाप हूँ जो बन गया वरदान बन्धन में,
कूल भी हूँ, कूलहीन प्रवाहिनी भी हूँ!

नयन में जिसके जलद, वह तृषित चातक हूँ,
शलभ जिसके प्राण में, वह निठुर दीपक हूँ,
फूल को उर में छिपाये, विकल बुलबुल हूँ,
एक होकर दूर तन से छाँह वह चल हूँ,
दूर तुम से हूँ, अखंड सुहागिनी भी हूँ!

आग हूँ जिससे ढुलकते बिन्दु हिम-जल के,
शून्य हूँ जिसको बिछे हैं पाँवड़े पल के,
पुलक हूँ वह जो पला है कठिन प्रस्तर में,
हूँ वही प्रतिबिम्ब जो आधार के उर में;
नील घन भी हूँ, सुनहली दामिनी भी हूँ!

नाश भी हूँ मैं, अनन्त विकास का क्रम भी,
त्याग का दिन भी, चरम आसक्ति का तम भी,
तार भी, आघात भी झङ्कार की गति भी,
पात्र भी, मधु भी, मधुप भी, मधुर विस्मृति भी,
अधर भी हूँ, और स्मिति की चाँदनी भी हूँ।

CENTRAL LIBRARY

तृतीय

तुम मुझ में प्रिय! फिर परिचय क्या?

तारक में छवि, प्राणों में स्मृति,
पलकों में नीरव पद की गति,
लघु उर में पुलकों की संसृति;
भर लायी हूँ तेरी चंचल
और करूँ जग में संचय क्या?

तेरा मुख सहास अरुणोदय,
परछाईं, रजनी विषादमय,
यह जागृति, वह नींद स्वप्नमय,
खेल-खेल, थक-थक सोने दो
मैं समझूँगी सृष्टि प्रलय क्या?

तेरा अधर-विचुम्बित प्याला,
तेरी ही स्मित मिश्रित हाला,
तेरा ही मानस मधुशाला;
फिर पूछूँ क्यों मेरे साकी!
देते हो मधुमय विषमय क्या?

रोम-रोम में नन्दन पुलकित,
साँस साँस में जीवन शत शत,
स्वप्न स्वप्न में विश्व अपरिचित;
मुझमें नित बनते मिटते प्रिय!
स्वर्ग मुझे क्या, निष्क्रिय लय क्या?

हारूँ तो खोऊँ अपनापन,
पाऊँ प्रियतम में निर्वासन;
जीत बनूँ तेरा ही बन्धन,
भर लाऊँ सीपी में सागर,
प्रिय! मेरी अब हार विजय क्या?

CENTRAL LIBRARY

चित्रित तू, मैं हूँ रेखा-क्रम,
मधुर राग तू, मैं स्वर-संगम,
तू असीम, मैं सीमा का भ्रम ;
काया छाया में रहस्यमय !
प्रेयसि प्रियतम का अभिनय क्या ?

चतुर्थ

मैं बनी मधुमास आली !

आज मधुर विषाद की चिर करुण आयी यामिनी,
बरस सुधि के इन्दु से छिटकी पुलक की चाँदनी,
उमड़ आयी री दृगों में
सजनि कालिन्दी निराली !

रजत स्वप्नों में उदित अपलक विरल तारावली,
जाग सुख-पिक ने अचानक मदिर पंचम तान ली
बह चली निश्वास की मृदु,
वात, मलय निकुंज-पाली !

सजल रोमों में बिछे हैं पाँवड़े मधुस्नात से,
आज जीवन के निमिष भी दूत हैं अज्ञात से ;
क्या न अब प्रिय की बजेगी,
मुरलिका मधु राग वाली ?
मैं बनी मधुमास आली।

—महादेवी वर्मा

10—1814 B.T.

सान्ध्य गीत

प्रथम

प्रिय ! सान्ध्य गगन,
मेरा जीवन !

यह क्षितिज बना धुँधला विराग,
नव अरुण अरुण मेरा सुहाग,
छाया सी काया वीतराग ;
सुख भीने स्वप्न रँगीले घन,

साधों का आज सुनहलापन,
घिरता विषाद का तिमिर सघन,
सन्ध्या का नभ से मूक मिलन--
यह अश्रुमती हँसती चितवन !

लाता भर श्वासों का समीर,
जग से स्मृतियों का गन्ध धीर,
सुरभित हैं जीवन-मृत्यु-तीर,
रोमों में पुलकित कैरव वन !

अब आदि अंत दोनों मिलते,
रजनी दिन परिणय से खिलते,
आँसू मिस हिम के कण ढुलते,
ध्रुव आज बना स्मृति का चल क्षण !

इच्छाओं के सोने से शर,
किरणों से द्रुत झीने सुंदर,
सूने असीम नभ में चुभकर--
जन-जन गाते नक्षत्र-सुभग !

घर लौट चले सुख-दुख-विहग,
तम पोंछ रहा मेरा अगजग,
छिप आज चला वह चित्रित मग,
उतरो अब पलकों में पाहुन !

द्वितीय

शलभ मैं शापमय वर हूँ !
किसी का दीप निष्ठुर हूँ !
ताज है जलती शिखा
चिनगारियाँ शृंगार-माला,
ज्वाल अक्षय कोष-सी
अंगार मेरी रंगशाला ;
नाश में जीवित किसी की साध सुन्दर हूँ !

नयन में रह किन्तु जलती
पुतलियाँ आगार होंगी,
प्राण में कैसे बसाऊँ ?
कठिन अग्नि-समाधि होगी ;
फिर कहाँ पालूँ तुझे मैं मृत्यु-मन्दिर हूँ !

हो रहे झर कर दृगों से
अग्नि-कण भी क्षार शीतल,
पिघलते उर से निकल
निश्वास बनते धूम श्यामल ;
एक ज्वाला के बिना मैं राख का घर हूँ !

कौन आया था न जाने
स्वप्न में मुझको जगाने,
याद में उन अँगुलियों के
हैं मुझे पर युग बिताने,
रात के उर में दिवस की चाह का शर हूँ!

शून्य मेरा जन्म था
अवसान है मुझको सवेरा,
प्राण आकुल के लिए
संगी मिला केवल अँधेरा;
मिलन का मत नाम ले, मैं विरह में चिर हूँ!

—महादेवी वर्मा

बादल-राग

झूम-झूम मृदु गरज-गरज घन घोर!
राग-अमर! अम्बर में भर निज रोर!

झर झर झर निर्झर-गिरि-सर में,
घर, मरु, तरु-मर्मर सागर में,
सरित्-तड़ित्-गति-चकित पवनमें,
मन में, विजय-गहन-कानन में,
आनन-आनन में रव घोर-कठोर—
राग-अमर! अम्बर में, भर निज रोर!

CENTRAL LIBRARY

अरे वर्ष के हर्ष !
बरस तू बरस-बरस रस-धार।
पार ले चल तू मुझको,
बहा, दिखा मुझको भी निज
गर्जन भैरव-संसार !

उथल पुथल कर हृदय—
मचा हलचल—
चल रे चल—
मेरे पागल बादल !

धँसता दलदल,
हँसता है नद खल् खल्
बहता कहता कुलकुल कलकल कलकल !
देख देख नाचता हृदय
बहने को महा विकल—बेकल,
इस मरोर से—इसी शोर से—
सघन, घोर, गुरु, गहन रोर से
मुझे गगन का दिखा सघन वह छोर !
राग अमर ! अम्बर में भर निज रोर !

—सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

जागो फिर एक बार

जागो फिर एक बार!

प्यारे, जगाते हुए हारे सब तारे तुम्हें
अरुण पंख तरुण-किरण
खड़ी खोलती है द्वार--

जागो फिर एक बार!

आँखें अलियों-सी
किस मधु की गलियों में फँसीं,
बन्द कर पाँखें
पी रही हैं मधु मौन
या सोयीं कमल-कोरकों में?--
बन्द हो रहा गुंजार--

जागो फिर एक बार!

अस्ताचल ढले रवि,
शशि-छवि विभावरी में
चित्रित हुई है देख
यामिनी-गन्धा जगी,
एक टक चकोर-कोर दर्शन-प्रिय,
आशाओं भरी मौन भाषा बहुभावमयी
घेर रही चन्द्र को चाव से,
शिशिर-भार-व्याकुल कुल
खुले फूल झुके हुए,
आयी कलियों में मधुर
मद-उर यौवन-उभार--

जागो फिर एक बार!

CENTRAL LIBRARY

पिउ-रव पपीहे प्रिय बोल रहे,
सेज पर विरह-विदग्धा वधू
याद कर बीती बातें, रातें मन-मिलन की
मूँद रहीं पलकें चारु,
नयन-जल ढल गये,
लघुतर कर व्यथा-भार—
जागो फिर एक बार!

सहृदय समीर जैसे
पोंछो प्रिय नयन-नीर,
शयन-शिथिल-बाहें
भर स्वप्निल आवेश में,
आतुर उर-वसन मुक्त कर दो,
सब सुप्ति सुखोन्माद हो;
छूट छूट अलस
फैल जाने दो पीठ पर
कल्पना से कोमल
ऋजु-कुटिल प्रसार-कामी केश-गुच्छ।
तन-मन थक जायें,
मृदु सुरभि-सी समीर में,
बुद्धि बुद्धि में हो लीन,
मन में मन, जी जी में,
एक अनुभव बहता रहे
उभय आत्माओं में
कब से मैं रही पुकार—
जागो फिर एक बार!

उगे अरुणाचल में रवि
आयी भारती-रति कवि-कंठ में,
क्षण क्षण में परिवर्तित
होते रहे प्रकृति-पट,
गया दिन, आयी रात,
गयी रात, खुला दिन,
ऐसे ही संसार के बीते दिन, पक्ष, मास
वर्ष कितने ही हजार—
जागो फिर एक बार!

—सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

तुम और मैं

तुम तुंग हिमालय शृंग, और मैं चंचल-गति सुर-सरिता।
तुम विमल हृदय उच्छ्वास, और मैं कान्त-कामिनी कविता।

तुम प्रेम—और मैं शान्ति
तुम सुरापान-घन-अन्धकार, मैं हूँ मतवाली भ्रान्ति।
तुम दिनकर के खर-किरण-जाल, मैं सरसिज की मुसकान।
तुम वर्षों के बीते वियोग, मैं हूँ पिछली पहचान।

तुम योग—और मैं सिद्धि
तुम हो रागानुग निश्छल तप, मैं शुचिता सरल समृद्धि।
तुम मृदु मानस के भाव, और मैं मनोरंजिनी भाषा।
तुम नन्दन-वन-घन-विटप, और मैं सुख-शीतल-तरु शाखा।

CENTRAL LIBRARY

तुम प्राण—और मैं काया
तुम शुद्ध सच्चिदानन्द ब्रह्म, मैं मनोमोहिनी माया।
तुम प्रेममयी के कंठहार, मैं वेणी काल-नागिनी।
तुम कर-पल्लव झंकृत सितार, मैं व्याकुल विरह-रागिनी।

तुम पथ हो, मैं हूँ रेणु
तुम हो राधा के मनमोहन, मैं उन अधरों की वेणु।
तुम पथिक दूर के श्रान्त, और मैं बाट जोहती आशा।
तुम भवसागर दुस्तार, पार जाने की मैं अभिलाषा।

तुम नभ हो, मैं नीलिमा
तुम शरद-सुधाकर कला हास, मैं हूँ निशीथ मधुरिमा।
तुम गन्ध-कुसुम कोमल पराग मैं मृदुगति मलय-समीर।
तुम स्वेच्छाचारी मुक्त पुरुष, मैं प्रकृति-प्रेम-जंजीर।

तुम शिव हो, मैं हूँ शक्ति
तुम रघुकुल-गौरव रामचन्द्र, मैं सीता अचला भक्ति।
तुम हो प्रियतम मधुमास, और मैं पिक कल कूजन तान।
तुम मदन-पंचशर हस्त, और मैं हूँ मुग्धा अनजान।

तुम अम्बर, मैं दिग्वसना
तुम चित्रकार घन-पटल श्याम, मैं तड़ित्तूलिका रचना।
तुम रण-ताण्डव उन्माद-नृत्य, मैं युवति मधुर नूपुर-ध्वनि।
तुम नाद-वेद ओंकार-सार, मैं कवि शृंगार-शिरोमणि।

तुम यश हो, मैं हूँ प्राप्ति
तुम कुन्द-इन्दु, अरविन्द शुभ्र, तो मैं हूँ निर्मल व्याप्ति।

—सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

———

भिक्षुक

वह आता—
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता।
पेट पीठ दोनों मिलकर हैं एक,
चल रहा लकुटिया टेक,
मुट्ठी-भर दाने को—भूख मिटाने को
मुँह फटी पुरानी झोली का फैलाता—
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता।
साथ दो बच्चे भी हैं सदा हाथ फैलाए,
बाएँ से वे मलते हुए पेट को चलते,
और दाहिना दया-दृष्टि पाने की ओर बढ़ाए।
भूख से सूख ओंठ जब जाते
दाता—भाग्य-विधाता से क्या पाते?—
घूँट आँसुओं की पीकर रह जाते।
चाट रहे जूठी पत्तल वे सभी सड़क पर खड़े हुए,
और झपट लेने को उनसे कुत्ते भी हैं अड़े हुए।

—सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

गीत

अलि, घिर आए घन पावस के।
लख ये काले-काले बादल,
नील सिंधु में खुले कमल-दलै,
हरित ज्योति, चपला अति चञ्चल,
सौरभ के, रस के—

अलि, घिर आए घन पावस के।
द्रुम समीर-कम्पित थर थर थर,
झरतीं धाराएँ झर झर झर,
जगती के प्राणों में स्मर-सैर
बेध गए, कसके--
अलि, घिर आए घन पावस के।
हरियाली ने, अलि, हर ली श्री
अखिल विश्व के नव यौवन की,
मन्द-गन्ध कुसमों में लिख दी
लिपि जय की हँसके--
अलि, घिर आए घन पावस के।
छोड़ गए गृह जब से प्रियतम
बीते अपलक दृश्य मनोरम,
क्या मैं हूँ ऐसी ही अक्षम,
क्यों न रहे बसके--
अलि, घिर आए घन पावस के।

--सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

क्या दूँ ?

देवि, तुम्हें मैं क्या दूँ ?
क्या है, कुछ भी नहीं, ढो रहा व्यर्थ साधना-भार,
एक विफल रोदन का है यह हार--एक उपहार ;
भरे आँसुओं में हैं असफल कितने विकल प्रयास,
झलक रही है मनोवेदना, करुणा, पर-उपहास ;
क्या चरणों पर ला दूँ ?
और तुम्हें मैं क्या दूँ ?

जड़े तुम्हारे चल अंचल में चमक रहे हैं रत्न,
बरस रही माधुरी, चातुरी, कितना सफल प्रयत्न ;
कवियों ने चुन-चुन पहनाए तुमको कितने हार,
वहाँ हृदय की हार—आँसुओं का अपना उपहार ;
कैसे देवि, चढ़ा दूँ ?
कहो, और मैं क्या दूँ ?

स्वयं बढ़ा दो ना तुम करुणा-प्रेरित अपने हाथ,
अंधकार उर को कर दो रवि-किरणों का प्लुत प्रात ;
पहनो यह माला मा, उर में मेरे ये सङ्गीत,
खेलें उज्ज्वल, जिनसे प्रतिपल थी जनता भयभीत ;
क्या मैं इसे बढ़ा दूँ ?
और तुम्हें मैं क्या दूँ ?

—सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

मौन रही हार

मौन रही हार,
प्रिय-पथ पर चलती,
सब कहते शृंगार।

कण-कण कर कङ्कण, प्रिय
किण्-किण् रव किङ्किणी,
रणन-रणन नूपुर उर लाज,
लौट रङ्किणी ;
और मुखर पायल स्वर करें बार-बार,
प्रिय पथ पर चलती, सब कहते शृंगार !

CENTRAL LIBRARY

शब्द सुना हो, तो अब
लौट कहाँ जाऊँ?
उन चरणों को छोड़, और
शरण कहाँ पाऊँ?
बजे सजे उर के इस सुर के सब तार
प्रिय-पथ पर चलती, सब कहते शृंगार!

—सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

मरण को जिसने वरा है

मरण को जिसने वरा है, उसी ने जीवन भरा है।
परा भी उसकी, उसी के, अङ्क सत्य यशोधरा है।
सुकृत के जल से विसिञ्चित, कल्प-किञ्चित, विश्व-उपवन,
उसी की निस्तन्द्र चितवन, चयन करने को हरा है।
गिरिपताक उपत्यका पर हरित तृण से घिरी तन्वी
जो खड़ी है वह उसीकी पुष्पभरणा अप्सरा है।
जब हुआ वञ्चित जगत में, स्नेह से, आमर्ष के क्षण,
स्पर्श देती है किरण जो, उसी की कोमलकरा है।

—सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

गीत

(१)

कलियो, यह अवगुण्ठन खोलो।
ओस नहीं है, मेरे आंसू-
से ही मृदु पद धो लो॥

कोकिल-स्वर लेकर आया है
यह अशरीर समीर,
सुखमय सौरभ आज हुआ है
पञ्चवाण की तीर,
मन में कितना है रहस्य
ओ लघु सुकुमार शरीर !
व्योम तुम्हारे रुचिर रंग में
डूबा है गम्भीर।
सुरभि-शब्द की एक लहर में
तुम क्या हो, कुछ बोलो।
कलियो, यह अवगुण्ठन खोलो॥

(२)

समीरण, धीरे से वह जाओ।
मैं क्या हूँ, इन कलियों के
कानों में यह कह जाओ॥
वे विकसित होकर जग को
देंगी सुख सौरभ भार,
किरणें हिम-कण के भीतर
होंगी ज्योतित सुकुमार ;
तृण तृण ले लेंगे उज्ज्वलता
का नूतन परिधान,
विहगों को होगा अपने
मधुमय कण्ठों का ज्ञान ;
इस जीवन में साँस-रूप हो
कुछ क्षण को रह जाओ।
समीरण, धीरे से बह जाओ॥

—रामकुमार वर्मा

———

CENTRAL LIBRARY

कंकाल

क्या शरीर है ? शुष्क धूल का—
थोड़ा सा छवि-जाल,
इस छवि में ही छिपा हुआ है,
वह भीषण कंकाल !

उस पर इतना गर्व ? अरे,
इतने गौरव का गान,
थोड़ी-सी मदिरा है, उस पर,
सीखा है बलिदान !

मदमाती आँखों वाले, ओ ! ठहर अरे नादान !
एक-फूल की माला है, उस पर इतना अभिमान !

इस यौवन के इन्द्र-धनुष में
भरा वासना रंग,
काले बादल की छाया में,
सजता है यह ढंग ;
और उमंगों में भूला है,
बन कर एक उमंग,
एक टूटता-स्वप्न आँख में
कहता उसे 'अनंग'—

वह 'अनंग' जो धूल-कणों में भरता है उन्माद,
जर्जरपन में ले आता है नव यौवन की याद।

और (याद आया अब)—
मृगनयनी का नयन-विलास ;
हँसती और लजाती थी—
चितवन कानों के पास ;

कलित कपोलों की कोरों में—
भर ऊषा का रंग,
चंचल तीर चला चितवन का,
करती थी भ्रू-भंग,
मैंने देखा था उसमें, गिरते-फूलों का हास,
सन्ध्या के काले अम्बर में मिटता अरुण विकास!

दूर! दूर!! मत भरो कान में
वह मतवाला राग,
यही चाहते हो, मैं कर लूँ
इस जग से अनुराग?
गिरते हुए फूल से कर लूँ
क्या अपना शृंगार?
करने को कहते हो मुझ से,
निश्चल शव से प्यार?
गिन डालूँ कितनी आहों में अपने मन के भाव?
पथराई आँखों से कैसे देखूँ विष का स्राव?

अरे पुण्य की भाषा में तुम
क्यों कहते हो पाप?
क्षणिक सुखों की नीवों पर
क्यों उठा रहे सन्ताप?
सुमन-रंग से किस आशा पर
करते अमर विहार?
ओस-कणों में देख रहे—
सारे नभ का शृङ्गार?
प्यार-प्यार क्यों प्यार कर रहे नश्वरता से प्यार?
यहाँ जीत में छिपी हुई है इस जीवन की हार।

CENTRAL LIBRARY

मृत्यु वही है, जिसमें होती,
जीवित क्षण की हार ;
वे ही क्षण क्यों भाग रहे हैं,
वर्तमान् के पार ?
मेरे आगे ही, मेरे
जीवन का नाश विलास,
झाँक शुष्कता रही चोर-सी,
हृदय-सुमन के पास ;
जीवन-आभा बनती जाती दिन-दिन अधिक मलीन,
अन्धकार में भी बनता हूँ मैं लोचन से हीन।

झूल रहा हूँ पाकर स्मृति की
चंचल एक हिलोर,
देख रहा हूँ मैं जीवन के
किसी दूसरी ओर ;
हाँ, वह यौवन-लाली करती
जीवन-सुमन-विहार,
मादकता में धूल कणों से—
भी करती थी प्यार ;
शुष्क पत्तियों से करती थी आलिंगन का हाव ;
मतवाले बन कर आते थे, मन के नीरस भाव।

काले भावों की रजनी में
आशा का अभिसार,
मैंने छिप कर देखा था,
देखा था कितनी बार !

CENTRAL LIBRARY

उनका आना और समुत्सुक—
मेरे मन का प्यार,
दोनों भव बना देते थे
लज्जित लोचन चार,
किन्तु, मुझे क्या मिलता था ? क्या बतला दूँ उपहार ?
शीतल ओठों का मुरझाया-सा चुम्बन उस बार।

उत्सुकता के बदले में यह
भीषण अत्याचार।
घृणा, घृणा शत जिह्वा से
डँसती थी बारम्बार
आँखों की मदिरा का बन जाना
आँसू की धार,
बाहु-पाश का शक्तिहीन हो
गिरना धनुषाकार ;
यह था क्या उपहार, अरे इस जीवन का उपहार !
फूलरूप क्यों रखता है यह धूल-रूप संसार ?

छविमय कहते हो जिसको
जिसमें है रूप अपार,
अरे ! भरा है उसमें कितने,
पापों का संसार !
पहिन रहे हो हार,
उसी में झूल रही है हार ;
पुण्य मान कर क्यों करते हो इन पापों से प्यार ?
मुझे न छूना, जतलाओ मत अपना झूठा प्यार,
धूल समझ कर छोड़ चुका हूँ यह कलुषित संसार।

—रामकुमार वर्मा

CENTRAL LIBRARY

ये गजरे तारों वाले

इस सोते संसार बीच
जग कर, सज कर, रजनी-बाले !
कहाँ बेंचने ले जाती हो,
ये गजरे तारों वाले ?

मोल करेगा कौन !
सो रही हैं उत्सुक आँखें सारी ;
मत कुम्हलाने दो,
सूनेपन में अपनी निधियाँ न्यारी।

निर्झर के निर्मल जल में
ये गजरे हिला हिला धोना ;
लहर हहर कर यदि चूमे तो,
किंचित विचलित मत होना।

होने दो प्रतिविम्ब विचुम्बित,
लहरों ही में लहराना ;
'लो मेरे तारों के गजरे'
निर्झर-स्वर में यह गाना।

यदि प्रभात तक कोई आकर
तुमसे हाय ! न मोल करे,
तो फूलों पर ओस रूप में,
बिखरा देना सब गजरे।

--रामकुमार वर्मा

———

CENTRAL LIBRARY

समय शान्त है

समय शान्त है, मौन तपस्वी-सा तप में लवलीन,
रात्रि मुझे तो दिन ही है, केवल दिनकर से हीन,
नभ के पद पर धरा पड़ी है, यह है चिर अभिशाप,
तारे अपना हृदय खोल दिखलाते हैं सन्ताप।

प्रेयसि! जग है एक
भटकता शून्य स-तम अज्ञात
एक ज्योति-सी उठो,
गिरो पथ-पथ पर बनकर प्रात।

मैं तुमसे मिल सकूँ, यथा उर से सुकुमार दुकूल,
समय-लता में खिले मिलन के दिन का उत्सुक फूल;
मेरे बाहु-पाश से वेष्टित हो यह मृदुल शरीर,
चारों ओर स्वर्ग के होगा पृथ्वी का प्राचीर।

नभ के उर में विमल नीलिमा
शयित हुई सुकुमार;
उसी भाँति तुमसे निर्मित हो,
मेरा उर-विस्तार।

—रामकुमार वर्मा

भूलकर भी तुम न आये

भूलकर भी तुम न आये!
आँख के आँसू उमड़कर,
आँख ही में हैं समाये॥

सुरभि से शृङ्गारकर—
नव वायु प्रिय-पथ में समाई,
अरुण कलियों ने स्वयं सज,
आरती उर में सजाई।
वन्दनाकर पल्लवों ने,
नवल वन्दनवार छाये॥

मैं ससीम, असीम सुख से,
सींचकर संसार सारा।
साँस की विरुदावली से,
गा रहा हूँ यश तुम्हारा।
पर तुम्हें अब कौन स्वर,
स्वरकार! मेरे पास लाये ?
भूलकर भी तुम न आये!

—रामकुमार वर्मा

मैं क्या गाऊँ ?

प्रिय! तुम भूले मैं क्या गाऊँ ?
जिस ध्वनि में तुम बसे उसे,
जग के कण-कण में क्या बिखराऊँ! प्रिय०
शब्दों के अधखुले द्वार से अभिलाषाएँ निकल न पातीं।
उच्छ्वासों के लघु-लघु पथ पर इच्छाएँ चलकर थक जातीं॥
हाय, स्वप्न-सङ्केतों से मैं,
कैसे तुमको पास बुलाऊँ ? प्रिय०
जुही-सुरभि की एक लहर से निशा बह गई, डूबे तारे।
अश्रु-बिन्दु में डूब-डूबकर, दृग-तारे ये कभी न हारे!!

दुख की इस जागृति में कैसे,
तुम्हें जगाकर मैं सुख पाऊँ?
प्रिय! तुम भूले मैं क्या गाऊँ?

—रामकुमार वर्मा

कुरुक्षेत्र

"धर्मराज, यह भूमि किसीकी
नहीं क्रीत है दासी,
है जन्मना समान परस्पर
इसके सभी निवासी।

"है सबको अधिकार मृत्ति का
पोषक-रस पीने का,
विविध अभावों से अशंक हो
कर जग में जीने का।

"सबको मुक्त प्रकाश चाहिए,
सबको मुक्त समीरण
बाधा-रहित विकास, मुक्त
आशंकाओं से जीवन।

"उद्भिज-निभ चाहते सभी नर
बढ़ना मुक्त गगन में,
अपना चरम-विकास ढूँढ़ना
किसी प्रकार भुवन में।

"लेकिन, विघ्न अनेक अभी
इस पथ में पड़े हुए हैं,
मानवता की राह रोक कर
पर्वत अड़े हुए हैं।

"न्यायोचित सुख सुलभ नहीं
जब तक मानव-मानव को,
चैन कहाँ धरती पर, तबतक
शान्ति कहाँ इस भव को?

"जबतक मनुज-मनुज का यह
सुख-भाग नहीं सम होगा,
शमित न होगा कोलाहल,
संघर्ष नहीं कम होगा:

"था पथ सहज अतीव, सम्मिलित
हो समग्र सुख पाना,
केवल अपने लिए नहीं,
कोई सुख-भाग चुराना।

"उसे भूल नर फँसा परस्पर
की शंका में, भय में,
निरत हुआ केवल अपने ही
हेतु भोग-संचय में।

"इस वैयक्तिक भोगवाद से
फूटी विष की धारा,
तड़प रहा जिसमें पड़कर
मानव-समाज यह सारा।

"प्रभु के दिये हुए सुख इतने
हैं विकीर्ण धरणी पर,
भोग सकें जो इन्हें, जगत में
कहाँ अभी इतने नर ?

"भू से ले अम्बर तक यह जल
कभी न घटने वाला,
यह प्रकाश, यह पवन, कभी भी
नहीं सिमटने वाला,

"यह धरती फल-फूल, अन्न, धन,
रतन उगलने वाली,
यह पलिका मृगव्य जीव की
अटवी सघन निराली,

"तुङ्ग शृङ्ग ये शैल कि जिनमें
हीरक-रत्न भरे हैं,
ये समुद्र, जिनमें मुक्ता,
विद्रुम, प्रवाल बिखरे हैं।

"और, मनुज की नई-नई
प्रेरक वे जिज्ञासाएँ!
उसकी वे सुवलिष्ठ, सिन्धु-मन्थन
में दक्ष भुजाएँ।

"अन्वेषिणी बुद्धि वह
तम में भी टटोलने वाली,
नव रहस्य, नव रूप प्रकृति का
नित्य खोलने वाली।

"इस भुज, इस प्रज्ञा के सम्मुख
कौन ठहर सकता है?
कौन विभव वह जो कि पुरुष को
दुर्लभ रह सकता है?

"इतना कुछ है भरा विभव का
कोष प्रकृति के भीतर,
निज इच्छित सुख-भोग सहज
ही पा सकते नारी-नर।

"सब हो सकते तुष्ट, एक-सा
सब सुख पा सकते हैं,
चाहें तो पल में धरती को
स्वर्ग बना सकते हैं।

"छिपा दिये सब तत्त्व आवरण
के नीचे ईश्वर ने,
संघर्षों से खोज निकाला
उन्हें उद्यमी नर ने।

"ब्रह्मा से कुछ लिखा भाग्य में
मनुज नहीं लाया है,
अपना सुख उसने अपने
भुजबल से ही पाया है।

"प्रकृति नहीं डर कर झुकती है
कभी भाग्य के बल से,
सदा हारती वह मनुष्य के
उद्यम से, श्रमजल से।

ब्रह्मा का अभिलेख पढ़ा—
करते निरुद्यमी प्राणी,
धोते वीर कु-अंक भाल का
बहा भ्रुवों से पानी।

—रामधारी सिंह 'दिनकर'

कस्मै देवाय ?

रच फूलों के गीत मनोहर चित्रित कर लहरों के कम्पन ;
कविते, तेरी विभव-पुरी में, स्वर्गिक स्वप्न बना कविजीवन ;
छाया सत्य-चित्र बन उतरी ; मिला शून्य को रूप सनातन ;
कवि-मानस का स्वप्न भूमि बन कर आया सुर-तरु मधु-कानन।
भावुक मन था रोक न पाया, सज आए पलकों में सावन ;
नालन्दा, वैशाली की कब्रों पर बरसे पुतली के घन।
दिल्ली की गौरव-समाधि पर आँखों ने मोती बरसाए ;
बोरष्टल, जलियानबाग के ज्योतिवीर स्मृति में उग आए।
बार-बार रोती रावी की लहरों से निज कंठ मिलाकर ;
देवि ? तुझे सच रुला चुका हूँ, सूने में आँसू बरसाकर।
मिथिला में पाया न कहीं तब ढूँढ़ा बोधि-वृक्ष के नीचे ;
गौतम का पाया न पता गंगा की लहरों ने दृग मीचे।
मैं निज प्रियदर्शन अतीत का खोज रहा सब ओर नमूना,
सच है, या मेरे दृग का भ्रम ! लगता विश्व मुझे यह सूना।
छीन-छीन जल-थल की थाती संस्कृति ने निज रूप सजाया ;
विस्मय है, तो भी न शान्ति का दर्शन एक पलक को पाया।

जीवन का यति-साम्य नहीं क्यों फूट सका अब तक तारों से ?
तृप्ति न क्यों जगती में आई अब तक भी आविष्कारों से।
जो मंगल-उपकरण कहाते, वे मनुजों के पाप हुए क्यों !
विस्मय है, विज्ञान विचारे के वर ही अभिशाप हुए क्यों ?
धरणी चीख-कराह रही है दुर्वह शस्त्रों के भारों से।
सभ्यजगत को तृप्ति नहीं अब भी युग-व्यापी संहारों से।
गूंज रही संस्कृति-मण्डप में भीषण फणियों की फुंकारें ;
गढ़ते ही भाई जाते हैं भाई के वध-हित तलवारें।
शुभ्र वसन वाणिज्य-न्याय का आज रुधिर से लाल हुआ है।
किरिच-नोक पर अवलम्बित व्यापार, जगत बेहाल हुआ है।
सिर धुन-धुन सभ्यता-सुन्दरी रोती है बेबस निज रथ में—
'हाय, दनुज किस ओर मुझे ले खींच रहे शोणित के पथ में ?''
दिक्-दिक् शस्त्रों की झन-झन-झन, धन-पिशाच का भैरव-नर्तन !
दिशा-दिशा में कलुष-नीति हत्या, पातक, तृष्णा, आवर्तन।
दलित हुए निर्बल सबलों से, मिटे राष्ट्र, उजड़े दरिद्र जन ;
आह ; सभ्यता आज कर रही असहायों का शोणित-शोषण।
क्रांतिधात्रि ! कविते ! उठ जाग, आडम्बर में आग लगा दे।
पतन पाप, पाखण्ड जलें जग में ऐसी ज्वाला सुलगा दे।
विद्युत् की इस चकाचौंध में देख, दीप की लौ रोती है ;
अरी, हृदय को थाम, महल के लिये झोपड़ी बलि होती है।
देख, कलेजा फाड़ कृषक दे रहे हृदय-शोणित की धारें ;
और उठी जातीं उन पर ही वैभव की ऊँची दीवारें।
धनपिशाच के कृषक-मेघ में नाच रही पशुता मतवाली,
आगन्तुक पीते जाते हैं दीनों के शोणित की प्याली ।
उठ भूषण की भाव-रंगिणी ! रूसो के दिल की चिनगारी !
लेनिन के जीवन की ज्वाला जाग ; जाग री क्रान्तिकुमारी !
लाखों क्रौंच कराह रहे हैं, जाग आदि कवि की कल्याणी !
फूट-फूट तू कवि-कंठों से बन व्यापक निज युग की वाणी।

CENTRAL LIBRARY

बरस ज्योति बन गहन तिमिर में, फूट मूक की बनकर भाषा।
चमक अन्ध की प्रखर दृष्टि बन उमड़ गरीबी की बन आशा।
गूँज शान्ति की सुखद साँस-सी कलुषपूर्ण युग-कोलाहल में!
बरस सुधामय कनक-वृष्टि बन ताप तप्त जग के मरुस्थल में।
खींच स्वर्ग संगीत मधुर से जगती को जड़ता से ऊपर!
सुख की स्वर्ण-कल्पना-सी तू छा जाये कण-कण में भू पर।
क्या होगा, अनुचर न वाष्प हो, पड़े न विद्युत्-दीप जलाना;
मैं न अहित मानूंगा चाहे मुझे न नभ के पन्थ चलाना।
तमसा के अति भव्य पुलिन पर चित्रकूट के छायातरु तर;
कहीं तपोवब के कुञ्जों में देना पर्ण-कुटी का ही घर!
जहाँ तृणों में तू हँसती हो, बहती हो, सरि में इठलाकर;
पर्व मानती हो तरु-तरु पर तू विहंग-स्वर में गा-गाकर।
कन्दमूल, नीवार भोगकर सुलभ इंगुदी तेल जलाकर;
जन-समाज सन्तुष्ट रहे हिल-मिल आपस में प्रेम बढ़ाकर।
धर्म्म-भिन्नता हो न, सभी जन शैल-तटी में हिल-मिल जावें।
ऊषा के स्वर्णिम प्रकाश में भावुक भक्ति-मुग्ध मन गावें—
'हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
सदाधार पथिवीं द्यामुतेमाम् कस्मै देवाय हविषा विधेम?"

—रामधारी सिंह 'दिनकर'

———

विश्वप्रिया

१

कल मुझमें उन्माद जगा था, आज व्यथा निस्पन्द पड़ी—
कल आरक्त लता फूली थी, पत्ती-पत्ती आज झड़ी।
कल दुर्दम्य भूख से तुझको माँग रहे थे मेरे प्राण—
आज आप्त तू, दात्री, मेरे आगे दत्ता बनी खड़ी।

अपना भूत रौंद पैरों से, बन विकास की असह पुकार——
अपनों को ठुकराकर, मात्र पुरुष आया था तेरे द्वार।
तू भी उतनी ही असहाया, उसी प्रेरणा से आक्रान्त——
तुझमें भी तब जगा हुआ था वह ज्वालामय हाहाकार !

वह कल था, जब आगे था भावी, प्राणों में थी ज्वाला——
आज पड़ा है उसके फूलों पर तम का पट, घन काला !
वह यौवन था, जिसके मद में दोनों ने उन्मद होकर——
इच्छा के झिलमिल प्याले में अनुभव-हालाहल ढाला !

अमर प्रेम है, कहते हैं, तब यह उत्थान-पतन कैसा ?
स्थिर है उसकी लौ, तब यह चिर-अस्थिर पागलपन कैसा ?
वह है यज्ञ जो कि श्वासों की अविरल आहुतियाँ पाकर——
जला निरन्तर करता है, तब यह बुझने का क्षण कैसा ?

सोचा था जग के सम्मुख आदर्श नया हम लाते हैं——
नहीं जानता था कि प्यार में जग ही को दुहराते हैं।
जग है, हम हैं, होंगे भी, पर बना रहा कब किसका प्यार ?
केवल इस उलझन के बन्धन में बँध भर हम जाते हैं !

कल ज्वाला थी जहाँ आज यह राख ढँपी चिनगारी है,
कल देने की स्वेच्छा थी अब लेने की लाचारी है।
स्वतन्त्रता में कसक न थी, बन्धनमें है उन्माद नहीं——
रो-रो जिए, आज आई हँस-हँस मरने की बारी है !

'कल था, आज हुआ है, कल फिर होगा,' हैं शब्दों के जाल——
मिथ्या, जिनकी मोहकता में, हमको बाँध रहा है काल।
फिर भी 'सत्य माँगते हैं हम', सबसे बढ़कर है यह झूठ——
सत्य चिरन्तन है भव के पीछे जो हँसता है कंकाल !

२

सुमुखि मुझको शक्ति दे
वरदान तेरा सह सकूँ मैं !

घोर घन की गूँज-सा
आयास जग पर छा रहा है,
दामिनी की तड़प-सा
उल्लास लुटता जा रहा है—
ऊपरी इन हलचलों की
आड़ में आकाश अविचल।
दे मुझे सामर्थ्य ध्रुव-सा
चिर-अचञ्चल रह सकूँ मैं !

शोर से पागल जगत् में
घुमड़ती हैं वेदनाएँ—
घोंटती है नियति मुट्ठी
वे न बाहर फूट आएँ—
बन्धनों के विश्व में, हे
बन्ध-मुक्ते ! हे विशाले !
दे मुझे उन्माद इतना
मुग्ध सरि-सा बह सकूँ मैं !

रो रहे हैं लोग जग की
चोट को हम सह न पाते—
'मौत चारों ओर है' सब
ओर स्वर हैं बिलबिलाते।
तू, जिसे भव की कठिनतम
चोट ने कोमल बनाया—
शक्ति दे, उर धार तुझको
घात सारे सह सकूँ मैं !

CENTRAL LIBRARY

रात सारी रात रोकर
ओस-कण दो छोड़ जाती,
साँझ तम में जीर्ण अपना
प्राण-धागा तोड़ जाती,
मौन, असफल मौन हो
फल-सा हुआ है प्राप्त जग को--
मुखर-रूपिणि! दान दे यह
प्यार अपना कह सकूँ मैं!

गहन जग-जंजाल में भी
राह अपने हित निकालूँ,
उलझ काँटों में पुरानी
जीर्ण केंचुल फाड़ डालूँ--
कूल-हीन असीम के उस
पार तक फैला भुजाएँ--
अडिग प्रत्यय से उमड़कर
हाथ तेरा गह सकूँ मैं!
सुमुखि, मुझको शक्ति दे
वरदान तेरा सह सकूँ मैं!

--'अज्ञेय'

एकायन

सखि! आगय नीम को बौर!
हुआ चित्रकर्मा वसन्त अवनी-तल पर सिरमौर।
आज नीम की कटुता से भी लगा टपकने मादक मधु-रस!
क्यों न फड़क फिर उठे तड़पती विह्वलता से मेरी नसनस!

सखि ! आ गये नीम को बौर !
'प्रणय-केलि का आयोजन सब करते हैं सब ठौर'--
कठिन यत्न से इसी तथ्य के प्रति मैं नयन मूँद लेती हूँ--
किन्तु जगाता पड़कुलिया का स्वर कह एकाएक, 'सखी तू?'

सखि ! आगये नीम को बौर !
प्रिय के आगम की कब तक है बाट जोहनी और ?
फैलाए पाँवड़े सिरिस ने बुन-बुनकर सौरभ के जाल--
और पलाश आरती लेने लिए खड़े हैं दीपक-थाल !

सखि ! आगये नीम को बौर !

--'अज्ञेय'

नदी के द्वीप

१

हम नदी के द्वीप हैं।
हम नहीं कहते कि हम को छोड़ कर स्रोतस्विनी बह जाय।
वह हमें आकार देती है।
हमारे कोण, गलियाँ, अन्तरीप, उभार, सैकत कूल,
सब गोलाइयाँ उसकी गढ़ी हैं।

माँ है वह। है, इसी से हम बने हैं।

२

किन्तु हम हैं द्वीप।
हम धारा नहीं हैं।
स्थिर समर्पण है हमारा। हम सदा से द्वीप हैं स्रोतस्विनी के।
किन्तु हम बहते नहीं हैं। क्योंकि बहना रेत होना है।
हम बहेंगे तो रहेंगे ही नहीं।
पैर उखड़ेंगे। प्लवन होगा। ढहेंगे। सहेंगे। बह जायेंगे।

और फिर हम चूर्ण होकर भी कभी क्या धार बन सकते?
रेत बन कर हम सलिल को तनिक गँदला ही करेंगे।
अनुपयोगी ही बनायेंगे।

३

द्वीप हैं हम।
यह नहीं है शाप। यह अपनी नियति है।
हम नदी के पुत्र हैं। बैठे नदी के क्रोड़ में।
वह बृहद् भूखंड से हम को मिलाती है।
और वह भूखंड

अपना पितर है।

४

नदी, तुम बहती चलो।
भूखंड से जो दाय हम को मिला है, मिलता रहा है,
माँजती, संस्कार देती चलो:
यदि ऐसा कभी हो
तुम्हारे आह्लाद से या दूसरों के किसी स्वैराचार से—
अतिचार से—

तुम बढ़ो, प्लावन तुम्हारा घरघराता उठे—
यह स्रोतस्विनी ही कर्मनाशा कीर्तिनाशा घोर
काल-प्रवाहिनी बन जाय
तो हमें स्वीकार है वह भी। उसी में रेत होकर
फिर छनेंगे हम। जमेंगे हम। कहीं फिर पैर टेकेंगे।
कहीं फिर भी खड़ा होगा नये व्यक्तित्व का आकार।

मातः, उसे फिर संस्कार तुम देना।

—'अज्ञेय'

आरती के दीप

मेरे आरती के दीप!
झिपते-झिपते बहते जाओ सिन्धु के समीप!
तुम स्नेह-पात्र उर के मेरे—
मेरी आभा तुमको घेरे!
अपना राग जगत का विस्मृत आँगन जावे लीप!
मेरे आरती के दीप!
हम-तुम किसके पूजा-साधन?
किसको न्योछावर अपना मन?
प्रियतम! अपना जीवन-मन्दिर कौन दूर का द्वीप!
मेरे आरती के दीप!

—'अज्ञेय'

25.8.53